विवेक दीप

वर्ष—१ अप्रैल-मई (संयुक्तांक)—१९८२ अंक—४-५

कर्म, ज्ञान, भक्ति और योग—इनमें से किसी एक या अनेक या सबके द्वारा परमात्मा का दर्शन किया जा सकता है।

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)

यह अंक

कभी-कभी हम जीवन में आये दुःखों से विचलित होकर हताश हो उठते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। सम्पादकीय सम्बोधन में यह बताने की चेष्टा की गयी है कि सुख-दुःख हमारे मन की उपज हैं। इनकी वास्तविक कोई सत्ता है नहीं। मन के नियमन से हम सुख-दुःख के प्रभाव से मुक्त होकर सदैव आनन्द में विश्राम ले सकते हैं।

श्रीरामकृष्णदेव ने गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस का श्रवण किया था। इसके कई दोहे-चौपाइयों से वे प्रभावित भी हुए थे। समय-समय पर वे अपने भक्तों के बीच इनको उद्धृत भी किया करते थे। मानस से किस सीमा तक श्रीरामकृष्णदेव प्रभावित थे, इसका विद्वत्तापूर्ण विवेचन किया है रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना के ज्ञान-वृद्ध सचिव श्रीमत स्वामी वेदान्तानन्दजी महाराज ने।

श्रीरामकृष्ण वचनामृत का स्थान हिन्दुओं के बीच रामायण—महाभारत की भांति है। वस्तुतः यह एक महर्षि के मुख से निःसृत आध्यात्मिक अनुभवों का वेद है। इस ग्रंथ के प्रणेता श्री महेन्द्रनाथ गुप्त का परिचय प्रस्तुत किया है अविनाश गौतम ने।

मनोविज्ञान के प्रखर विद्वान् एवं श्रीरामकृष्ण उपासक डॉ० विमलेश्वर डे ने, रामकृष्ण वचना लेखनारंभ की शताब्दी के अवसर पर श्रीरामकृष्ण वच मृत के महत्व पर एक पारदर्शी विवेचन प्र किया है।

इस अंक में हमने श्री 'म' कृत वचनामृत का अंश 'प्रथम दर्शन' प्रकाशित किया है। यह श्रीरामकृष्ण मठ, नागपुर द्वारा प्रकाशित 'श्रीरामकृ वचनामृत' से हमने साभार लिया है।

श्रीराय नगेन्द्र प्रसाद स्वामी विज्ञानानन्द जी महारा के गृही शिष्य हैं। उनके निबंध (स्वामी विज्ञानानन्द सान्निध्य में) में विज्ञानानन्द जी के चारित्र्यपूर्ण विज्ञानमय व्यक्तित्व का सम्यक् निदर्शन हुआ है।

श्रीसारदा देवी की जीवन-कथा हम क्रमिक रूप से प्रकाशित कर रहे हैं। इसके लेखक श्रीमत स्वामी वेदान्तानन्द जी महाराज ने हमें इसे अनूदित कर प्रकाशित करने का अधिकार देकर अनुगृहीत किया है। अनुवादक हैं—**डॉ० केदारनाथ लाभ**।

इस अंक में

विवेक दीप

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द विचारधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—१ अप्रैल—मई (संयुक्तांक) १९८२ अंक—३-४

उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

सम्पादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सम्पादकीय कार्यालय

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५० रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग राशि सम्पादकीय कार्यालय के पता पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

भगवान सबके भीतर किस प्रकार विराजते हैं ?— जैसे कि चिक की आड़ में बड़े घर की स्त्रियाँ; वे सब को देखती हैं, पर उनको कोई नहीं देख पाता। भगवान भी इसी प्रकार सब में विद्यमान हैं।

(२)

जैसी जिसकी भावना, वैसी उसकी प्राप्ति। भगवान कल्पवृक्ष के समान हैं। उनसे जो कुछ प्रार्थना की जाती है, वही प्राप्त होता है। गरीब का लड़का हाई कोर्ट का जज बनकर समझता है—'मैं बड़ी अच्छी तरह से हूँ।' भगवान भी तब कहते हैं, 'तुम अच्छी तरह से ही रहो।' फिर पेन्शन लेकर घर में बैठता है, तब सोचता है—'इस जीवन में मैंने क्या किया ?' भगवान भी तब कहते हैं, 'हाँ ठीक ही तो है, तुमने किया क्या ?'

(३)

सरल बनने पर ईश्वर का शीघ्र ही लाभ होता है। जानते हो कितनों को ज्ञान नहीं होता ? एक—जिसका मन टेढ़ा है, सरल नहीं है। दूसरा—जिसे छूआछूत का रोग है, और तीसरा—जो संशयात्मा है।

श्रीरामकृष्ण-आरात्रिकम्

—स्वामी विवेकानन्द

खंडन-भव-बंधन, जगवन्दन, वन्दि तोमाय ।
निरंजन, नररूपधर, निर्गुण गुणमय ॥
मोचन-अघदूषण, जगभूषण, चिद्घनकाय ।
ज्ञानांजन-विमल-नयन, वीक्षणे मोह जाय ॥
भास्वर, भावसागर, चिर-उन्मद प्रेम-पाथार ।
भक्तार्जनयुगलचरण, तारण-भव-पार ॥
जृम्भित-युग-ईश्वर, जगदीश्वर योग-सहाय ।
निरोधन समाहित-मन निरखि तव कृपाय ॥
भंजन-दुःख-गंजन, करुणाघन, कर्म-कठोर ।
प्राणार्पण-जगत-तारण, कृन्तन-कलि-डोर ॥
वंचन-काम-कांचन, अतिनिन्दित-इन्द्रिय-राग ।
त्यागेश्वर, हे नरवर ! देह पदे अनुराग ॥
निर्भय, गत-संशय, दृढ़निश्चय-मानसवान् ।
निष्कारण-भकत-शरण, त्यजि जातिकुलमान ॥
संपद तव श्रीपद, भव गोष्पद-वारि यथाय ।
प्रेमार्पण, समदरशन, जगजन-दुःख जाय ॥
नमो नमो प्रभु वाक्यमनातीत मनोवचनैकाधार ।
ज्योतिर ज्योति उजल हृदिकन्दर
तुमि तमभंजनहार ॥ प्रभु ॥
धे धे धे लंग रंग भंग, बाजे अंग संग मृदंग ।
गाइछे छंद भकत-वृन्द आरति तोमार ॥
जय जय आरति तोमार ।
हर हर आरति तोमार ।
शिव शिव आरति तोमार ॥

अर्थ—हे भवबन्धन को खण्डन करनेवाले जगत् के वन्दनीय, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ । तुम निरंजन हो, नर-रूप धारण किये हो, निर्गुण होकर भी गुणमय हो ।

तुम मनुष्य को दूषित करनेवाले पाप से मुक्त करते हो, जगत् के भूषणरूपी हो, ज्ञान स्वरूप हो, ज्ञानरूपी अंजन से तुम्हारे नेत्र विशुद्ध हैं, तुम्हें देखने से ही मोह दूर भाग जाता है ।

तुम ज्ञानमय भाव-समुद्र हो, सदा मतवाले प्रेम-महावारिधि हो, तुम्हारे जो दोनों चरण भवसागर के पार उतार देते हैं वे भक्तों द्वारा ही प्राप्त करने योग्य है ।

तुम युगावतार के रूप में प्रकट हुए हो, जगदीश्वर हो, योग के सहायक हो, तुम्हारी कृपा से देखता हूँ, मेरी इन्द्रियाँ निरूद्ध और मन समाधिमग्न हुआ है ।

तुमने दुःख के उत्पातों को दूर किया है, तुम दया की मूर्ति हो और दृढ़ कर्मवीर हो, तुमने जगत् के उद्धार के लिए प्राणों को अर्पण कर दिया है, कलियुग के बंधनों को छिन्न कर दिया है ।

तुमने कामिनी और कंचन को छोड़ा है और इन्द्रियों के आकर्षणों को बहुत ही तुच्छ माना है, हे त्यागीश्वर, हे नरवर, मुझे श्रीचरणों में प्रेम दो ।

तुम भय रहित हो, तुममें कोई सन्देह नहीं रहा, तुम दृढ़-निश्चय तथा उदार चित्तवाले हो । तुम जाति या कुल का विचार न करके बिना कारण ही भक्तों को शरण देते हो ।

तुम्हारे चरणकमल ही मेरी सम्पत्ति हैं, जिनकी तुलना में यह संसार गाय के एक पैर से दबी जमीन के छोटे गढ़े में आनेवाला जल जैसा है । तुम प्रेम के दाता हो, समदर्शी हो, तुम्हारे दर्शन से जगत् निवासियों के सभी दुःख दूर होते हैं ।

वाणी व मन से परे होकर भी वाणी और मन के एकमात्र आधाररूपी हे प्रभो ! तुम्हें बार-बार नमस्कार ! तुम ज्योति की भी ज्योति हो, हृदय रूपी गुफा में उजेला करनेवाले तथा अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करनेवाले हो ।

भक्तगण छन्द में तुम्हारी आरती का संगीत गा रहे हैं, जिसमें धे धे धे रंग लंग भंग रब से अंगों के साथ-साथ मृदंग बज रहे हैं ।

तुम्हारी आरती की जय हो, तुम्हारी आरती पापों का हरण करने वाली तथा परम कल्याणदायिनी है ।

सम्पादकीय सम्बोधन

जिसे तुम समझे हो अभिशाप

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

प्राय: हमारा सारा जीवन एक देह-यात्रा बन कर रह गया है। देह-बुद्धि या शरीर-चेतना की प्रबलता के कारण हमारा मन भी प्राय: उन्हीं तत्वों की ओर उन्मुख रहता है जिनसे हमारे शरीर को सुख मिले। शरीर मन का यन्त्र है और मन से प्रभावित रहता है। परिणाम यह है कि हम सुख-दुःख के झंझावातों में सूखे पत्ते की भाँति उड़ते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त कर देते हैं। एक कवि ने कहा है—

> ये घटाएँ, ये सियाही, ये धुआँ, यह काजल
> उम्र तो अपनी इन्हें गीत बनाने में कटी;
> कौन समझे मेरी आँखों की नमी का मतलब
> जिन्दगी वेद थी, पर जिल्द बँधाने में कटी।

हाँ, जिन्दगी तो वेद थी ही, लेकिन हम वेद के पन्नों तक पहुँच कहाँ पाते! जिसकी सारी दृष्टि वेद की आकर्षक जिल्द पर ही टिकती-फिसलती रह जाय, वह वेद में निहित शाश्वत सत्य के परम-सौन्दर्य-दर्शन से उत्पन्न आनन्द का रस-भोग कैसे कर सकता है? इसके लिए तो जिल्द के सम्मोहन का अतिक्रमण कर भीतर की ओर जाने को तत्पर रहना होगा। हम जिल्दों में फँस कर रह जाते हैं, देह की दुनियाँ में चक्कर काटते रह जाते हैं, सांसारिक विषय-वस्तु के चक्र-व्यूह में घुस कर अभिमन्यु सा दम तोड़ देने को अभिशप्त हो जाते हैं। ऊँची इमारतें, मूल्यवान वस्त्राभूषण, बैंक-बैलेन्स, कमनीय पत्नी, ऊँचे पद, कार, फोन, टेलिविजन और न जानें कितना क्या हमें चाहिए। और इनमें से कभी-कभी एक या दो या कुछ अधिक वस्तुओं की पूर्ति में ही हमारी सारी जिन्दगी बीत जाती है और हम कुछ विशेष कर नहीं पाते। 'जीने की तैयारी में ही अपनी सारी उमर कट गयी।' शरीर यानी भौतिक वस्तुएँ, जिन्हें श्रीराम-कृष्ण कांचन और कामिनी कहते थे, ये जब तक हमारा आदर्श बनी रहेंगी, हम अपने लिए तबतक महान विपत्ति सिरजते रहेंगे—चिन्ता, दुःख, शोक आतंता, अशान्ति और अनन्त अशेष पीड़ाओं की विपत्ति।

एक नयी व्याही बहू अपनी ससुराल आयी थी कि चौथे दिन उसका नौजवान पति सदा के लिए चल बसा। वह पछाड़ खाकर रो रही थी। औरतें उसकी माँग का सिन्दूर पोंछ रही थीं, कलाई की चूड़ियाँ तोड़ रही थीं, माथे से टीका और शरीर से दूसरे आभूषण उतार रही थीं। अभी उसके नाखूनों की पॉलिश ताजा ही थी, तलहथी की मेंहदी के रंग में चटक थी ही, पाँवों में लगे महावर का रंग फीका भी नहीं हुआ था और वह विधवा हो गयी थी। एक रंगीन, स्वप्निल और फेनिल दुनिया से हठात् एक कुहासा से भरे, बर्फ से ढँके और दुश्चिन्ताओं की तरंगों से आहत संसार में वह फेंक दी गयी थी। क्या रखा था अब उसकी जिन्दगी में!

एक माँ का इकलौता जवान बेटा सर्प-दंश से मिनटों में जाता रहा। उस माँ का आर्त नाद, कुररी सा विलाप हृदय हिला देता था। कितनी मिन्नतों, दुआ-तावीजों के बाद तो उसे वह बेटा मिला था और मँझधार में ही अपनी माँ को छोड़कर चलता बना। उस माँ की आँखों के आगे अब अँधेरा ही अँधेरा था—गहन वेदना का सघन अँधकार। क्या रखा था अब उसकी जिन्दगी में!

मेरे कॉलेज-जीवन के एक सहपाठी को उसकी प्रेमिका ने ठीक उसी रात धोखा दे दिया जिस रात भगवती के मंदिर में जाकर दोनों विवाह कर लेने को प्रतिबद्ध थे। मित्र को काटो तो खून नहीं। आँखों के

आँसू तक सूख गये थे। वह इतना ही कहता था—'मैं भीतर से टूट गया हूँ। क्या रखा है अब मेरी जिन्दगी में।'

मेरे एक प्रतिभाशील, कर्मठ और सुपठित प्राध्यापक मित्र का प्रोन्नयन (प्रोमोशन) नहीं हो सका। वे काफी निराश हो गये थे। कहते थे—'अबकी नहीं हुआ तो अब कब होगा? अब तो नौकरी के दिन भी कम ही बचे। उनका जी टूट गया था, मन खिन्न हो गया था। क्या रखा था अब उनकी जिन्दगी में!

इस तरह कितने ही ऐसे आदमी है जिनके जीवन में घटित कोई घटना उन्हें इस कदर तोड़ देती है कि उन्हें अपना जीवन आग के समुद्र-सा धधकता दिखाई देने लगता है। वे सोचते है, अब उनके जीवन में इससे अधिक दुःखद, कष्टकर और अप्रिय घटना और क्या होगी! एक पूरे भयंकर अभिशाप से घिर गया है उनका जीवन—सारे रसों, आनन्दों और उमंगों से दूर। अब उनके जीवन में कोई वसंत नहीं आयेगा, कोई फूल नहीं खिलेगा, कोई कोयल नहीं कूकेगी, कोई घटा नहीं उमड़ेगी, कोई मोर नहीं नाचेगा, केवल अंधकार अंधकार को उगलेगा, आग ज्वालाओं का वमन करेगी और निराशा का सर्वनाशी प्रभंजन अपनी भयंकर बाँहों में उनका मृत्यु पर्यन्त आश्लेष करता रहेगा। उनके जीवन में कहीं से कोई आशा का आलोक नहीं आयेगा, उत्फुल्लता का दीप नहीं जलेगा और आनन्द का कोई मंगलमय ज्योति कलश कभी नही सजेगा।

लेकिन ऐसे प्राणियों को एक कवि आशा का संदेश देता हुआ कहता है—

> जिसे तुम समझे हो अभिपाप,
> जगत की ज्वालाओं का मूल
> ईश का वह रहस्य वरदान,
> कभी मत इसको जाओ भूल।
>
> (कामायनी: श्रद्धा सर्ग)

यह केवल किसी ऋषि-कवि की काव्यात्मक वाणी नहीं है, इन पंक्तियों में वैदिक मंत्र की गरिमा है। ये पंक्तियाँ जीवन का वेद हैं। इनमें जीवन के निगूढ़तम सत्य का, ईश्वर की रहस्यमय लीला का मंगल उद्घाटन हुआ है।

वस्तुतः हमारे जीवन में दुःख की कोई सत्ता नहीं है। दुःख है, मगर हमारे मन को, हमारे शरीर को। हमारे आत्मिक रूप को, हमारे मूल स्वरूप को दुःख का भू-स्पर्श भी नहीं होता। फिर हम इतने विचलित क्यों हो जाते है जीवन की कुछेक घटनाओं से!

जब तक हम अपने को देह मानेंगे, मन और बुद्धि मानेंगे तब तक दुःख से छुटकारा नहीं है। जब तक मन की अनुकूलता और प्रतिकूलता से प्रभावित होते रहेंगे तब तक सुख-दुःख से उबर नहीं सकते।

मन की अनुकूलता से उपलब्ध सुख ऐन्द्रिक सुख ही होता है। इसकी परिणति दुःख में होनी ही है। सबसे बड़ा अभिशाप है अवश मन का विषयोन्मुखी होना, विषयों में सुख का संधान करना। कृष्ण ने अर्जुन को समझाया है कि जो विषयों का चिन्तन करते हैं उनकी विषयों से आसक्ति हो जाती है, आसक्ति से कामना का जन्म होता है, कामना क्रोध की जननी है, क्रोध अविवेकिता उत्पन्न करता है, अविवेक से स्मृति भ्रमित होती है, भ्रमित स्मृति से बुद्धि का नाश होता है और बुद्धि के नाश होने से मनुष्य अपने श्रेय साधन से गिर जाता है अर्थात् उसका विनाश हो जाता है।[1] एक पूरी कड़ी है, पूरी शृंखला है। सब की जड़ में है मन की विषयोन्मुखता। इस मन को कैसे विषय से मोड़कर प्रशान्ति की ओर ले जाया जाय!

श्रीरामकृष्ण का कथन है—'आनन्द तीन प्रकार के होते हैं—विषयानन्द, भजनानन्द और ब्रह्मानन्द। जिसमें लोग सदा लिप्त रहते हैं—जो कामिनी और कांचन का आनन्द है, उसे विषयानन्द कहते हैं। ईश्वर के नाम और गुणों का गान करने से जो आनन्द मिलता है उसका नाम है भजनानन्द और ईश्वर के दर्शन में जो आनन्द है उसका नाम है ब्रह्मानन्द। ब्रह्मानन्द को प्राप्त करके ऋषि स्वेच्छा बिहारी हो जाते थे।'[2]

---

1. श्रीमद्भगवगीता ॥२।६२-६३॥ 2. 'म' कृत, श्रीरामकृष्ण वचनामृत भाग-२ पृ० २०३-०४

मालूम होता है कि प्रकाश फिर कभी नहीं होगा, जब आशा और साहस का प्रायः लोप हो जाता है, तब इस भयंकर आध्यात्मिक तूफान में ब्रह्म की अंतर्ज्योति चमक उठती है। वैभव की गोद में पला हुआ, फूलों में पोसा हुआ, जिसने कभी एक आँसू भी नहीं बहाया, क्या ऐसा कोई व्यक्ति कभी बड़ा हुआ है, उसका अन्तर्निहित ब्रह्मभाव कभी व्यक्त हुआ है? तुम रोने से क्यों डरती हो? रोना न छोड़ो! रोने से नेत्रों में निर्मलता आती है और अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। उस समय भेद की दृष्टि—मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं और सब स्थानों में और सब वस्तुओं में अनन्त ब्रह्म की अनुभूति होने लगती है। तब—

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥

—सर्वत्र ही ईश्वर को समभाव से उपस्थित देखकर वह आत्मा को आत्मा से हानि न पहुँचाकर परम गति को प्राप्त करता है।'[9]

अतएव मेरे मित्रों, हमारे जीवन में दुःख की कोई तात्विक सत्ता नहीं है, व्यथा-वेदना के अभिशाप का कोई अस्तित्व नहीं है। हमारे हृदयाकाश में आनन्द (आनन्द स्वरूप आत्मा) का अधिवास है। आनन्द से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, आनन्द के द्वारा ही जीवित रहते हैं और प्रयाण करते समय आनन्द में ही समा जाते हैं।[10] भगवान् श्रीरामकृष्ण हम सब को वह प्रेरणा और प्रकाश दें कि हम सब सदैव आनन्द में, परमानन्द में प्रतिष्ठित रहें।

---

9. स्वामी विवेकानन्द द्वारा श्रीमती मृणालिनी बसु को देवघर, वैद्यनाथ से २३ दिसम्बर १८९८ ई० को लिखित पत्र का अंश।
10. तैत्तिरीय उपनिषद्: ३।६

उस देश में (भगवान् श्रीरामकृष्णदेव की जन्मभूमि में) लोग जब धान की नाप-तौल करते हैं, तब एक आदमी तो नापता रहता है और दूसरा पीछे खड़ा रहता है। जब नापते-नापते धान के ढेर में कमी होने लगती है, तब वह पीछे का आदमी पीछे के ढेर से धान ढकेल कर सामने कर देता है। इसी प्रकार, जो लोग सच्चे साधु या भक्त होते हैं, उनके ईश्वरी कथा-कीर्तन में कमी होते न होते भीतर में नये-नये भाव पैदा होते-जाते हैं और इस प्रकार उनके भावों में कमी नहीं होने पाती।

—श्रीरामकृष्ण देव

गोस्वामी तुलसीदास और श्रीरामकृष्ण

—स्वामी वेदान्तानन्द

ईस्वी सन् की १५वी, १६वीं शताब्दी में सारे उत्तर भारत में सनातन धर्म और संस्कृति पर गहरी चोट पहुँची। इस्लाम का जबर्दस्त प्रत्यक्ष प्रचार और उसके परोक्ष प्रभाव से सनातन धर्मावलम्बियों पर बहुत गहरा असर पड़ा था। अकबर बादशाह द्वारा उद्भावित नया धर्ममत 'दीन-ई-इलाही' भी हिन्दुओं के चिराचरित विश्वासों को शिथिल करने लगा था। राजस्थान के राजपूत वीरों, जो धर्म और सामाजिक तथा मानविक मर्यादा की रक्षा के लिए प्राण देने को सदा तैयार रहते थे उनमें भी कोई-कोई व्यक्ति अपनी बेटी-बहनों को मुगल बादशाह या क्षमतासीन मुसलमानों को सौंप देने में गौरव मानने लगे थे। देश में संस्कृत भाषा और शास्त्रों की चर्चा में बहुत कमी हो गयी थी। हिन्दुओं में शिक्षितवर्ग राज भाषा फारसी सीखने में गौरव और लाभ का अनुभव करने लगे थे।

हिन्दुस्तान के ऐसे संकटपूर्ण समय में सनातन धर्म और संस्कृति को बचाने के लिए या हिन्दू एवं मुसलमान धर्मों में समन्वय-स्थापना के लिए प्रायः एक ही काल में उत्तर भारत में श्री चैतन्य, रामानन्द, कबीर, गुरु नानक और गोस्वामी तुलसीदास का आविर्भाव हुआ था। इन महापुरुषों ने धर्म-संरक्षण या धर्म-समन्वय के लिए भिन्न-भिन्न रास्ता अपनाया। गोस्वामी जी अपनी काव्य-कृति का सहारा लेकर जन-मानस पर असाधारण प्रभाव विस्तार करने में सफल हुए थे। हिन्दी भाषा में अतुलनीय काव्य रामचरित मानस, जो ग्रन्थ केवल वेद, उपनिषद, पुराण इतिहास का सार संकलन ही नहीं, परन्तु आख्यायिका में वाल्मीकि रामायण का अनुसरण करते हुए भी स्थान-स्थान पर मौलिक भावों से समृद्ध है हिन्दू, जनसाधारण को इस्लाम धर्म के प्रभाव से बचाने में और जन मानस में सनातन धर्म का प्राकृत रूप अंकित करने में बहुत सफल एवं सहायक सिद्ध हुआ। अभी भी यह प्रभाव घटा नहीं है।

अब हम श्री रामकृष्ण देव पर तुलसीदास जी के प्रभाव की कुछ चर्चा करेंगे।

श्री रामकृष्ण देव ने संस्कृत भाषा और साहित्य का अध्ययन नहीं किया था। किन्तु, शास्त्र-ग्रन्थों का पाठ सुनने का उन्हें बहुत आग्रह था और साधु-महात्मा एवं विद्वान व्यक्तियों से दीर्घकाल तक सुनते-सुनते वे शास्त्र का मर्म समझने में समर्थ हो गये थे। वे न केवल वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, तन्त्र आदि हिन्दू शास्त्र-ग्रन्थों के श्रवण से तृप्त थे वल्कि बाईबिल के बंगला अनुवाद का पाठ भी सुन चुके थे। गोस्वामी जी ने सुदीर्घकाल तक सद्गुरु के चरणों में बैठकर शास्त्राध्ययन के बाद सकल शास्त्रों का निष्कर्ष रामचरित्र मानस में संकलित किया, जिस ग्रन्थ का पाठ या श्रवण कर हमलोग उनकी भक्ति एवं विद्वत्ता से प्रभावित होते हैं। बहुत श्रवण के फलस्वरूप श्री रामकृष्ण देव भी तुलसीदास जी के बराबर समस्त शास्त्रों के मर्मवेत्ता हुए थे। इस बात का प्रमाण श्री रामकृष्ण वचनामृत के पाठकों को उसी पुस्तक के हरेक पृष्ठ में मिलता है। श्री रामकृष्णदेव ने रामचरित मानस को भी गंभीर मनोयोग के साथ सुना था। इसके कुछ प्रमाण श्री रामकृष्ण वचनामृत से उपस्थापित करूँगा।

उसी ग्रन्थ में पाठक देखते हैं कि अपने उपदेश के प्रमाणस्वरूप श्री रामकृष्ण देव ने गोस्वामी जी के दो वचनों को एकाधिक बार उद्धृत किया। वे दो वचन हैं—

(१) वही राम दशरथ का बेटा,
यही राम घट-घट में लेटा।

वचनामृत में आद्यान्त, श्री 'म' (जिस नाम से मास्टर महाशय ने उसे प्रकाशित कराया) ने तिथि इत्यादि के विषय में सावधानी बरती है और हर घटना (या अध्याय) के प्रारम्भ में ही स्थान, तिथि आदि का स्पष्ट उल्लेख कर दिया है। प्रथम दर्शन का दिन मार्च १८८२ शीर्षक से छपा है जबकि सम्भवतः २७ फरवरी १८८२, को श्री 'म' ने श्रीरामकृष्ण देव के प्रथम दर्शन किये थे। ऐसा वचनामृत में उल्लिखित अन्य तथ्यों से निश्चित हो जाता है। अन्यत्र आपने लिखा है कि २३ फरवरी १८८२ के दो-तीन दिनों के अन्दर रविवार को अपने एक मित्र के साथ परमहंसदेव के प्रथम दर्शन किये थे। २३ फरवरी के दो-तीन दिन के अन्दर प्रथम रविवार २६ फरवरी १८८२ को ही था। अस्तु।

वचनामृत को मास्टर महाशय ने कभी एक प्रकाश्य ग्रन्थ समझकर लिपिबद्ध नहीं किया था। इसीलिए सम्भवतः इसका प्रारम्भ अचानक यों शुरू होता है जैसे जीवन की सच्ची घटनाएँ होती हैं। वचनामृत में प्रायः द्विरुक्ति का भी ध्यान नहीं रखा गया है और जैसे-जैसे या जितनी बार भी श्रीरामकृष्ण ने उपदेश दिये हैं या कहानियाँ कही हैं, लेखक ने अक्षरशः उन्हें लिपिबद्ध कर दिया है। इस अंक में अन्यत्र वचनामृत के कुछ अंश उद्धृत हैं जिनमें प्रथम दर्शन की चर्चा है। इसके उपरान्त, अप्रिल १८८६ तक की चर्चा क्रमशः लेखक ने की है जब श्रीरामकृष्ण अत्यन्त गम्भीर रूप से रोगाक्रान्त हो गये थे। इसके बाद के तीन-चार महीनों की चर्चा वचनामृत में बिलकुल नहीं है। सम्भतः श्रीरामकृष्ण की जीवन-लीला के शेष, एवं भौतिक कष्टों से पूर्ण, अध्यायों को लिपिबद्ध न कर मास्टर महाशय ने स्वयं को तीव्र भावोद्रेक से ही बचाया होगा। वचनामृत के शेष अध्याय में मास्टर महाशय ने श्रीरामकृष्ण के पार्षदों द्वारा नरेन्द्र के नेतृत्व में स्थापित मठ की चर्चा की है जिसमें प्रारम्भ के कुछ मास शिष्यों ने कठोर साधना में विताये थे। वचनामृत के इस भाग में २१ फरवरी १८८७ से १० मई १८८७ तक की मास्टर महाशय की मठ यात्रा की चर्चा है।

वचनामृत के लेखक के रूप में मास्टर महाशय की ईमानदारी सहज ही पाठकों को दीखती है। प्रथम दर्शन में श्रीरामकृष्ण ने उनका तिरस्कार किया था इसकी पूरी चर्चा वचनामृत में है। दूसरी ओर बाद के दिनों में कभी-कभी मास्टर महाशय के कतिपय गुणों की प्रशंसा भी श्रीरामकृष्ण ने की। इस प्रशंसा का उल्लेख भी वचनामृत में उतनी ही तटस्थता से किया है। ऐसा मास्टर महाशय की अहं-रहित लेखनी के लिए ही सम्भव था जिसने मिथ्या गर्व या निराधार विनम्रता किसी को भी प्रश्रय नहीं दिया।

स्वयं श्रीरामकृष्ण के विषय में भी वचनामृत का लेखक उतना ही स्पष्ट और ईमानदार है। सम्भवतः परमहंसदेव के ईश्वरत्व में अटूट विश्वास के कारण ही उनका प्रत्येक वाक्य या कृत्य वैसी ही श्रद्धा से लिपिबद्ध किया गया है। वचनामृत के पृष्ठों में श्रीरामकृष्ण साक्षात् एक आध्यात्मिक घटना के रूप में पाठकों के समक्ष आविर्भूत होते हैं जिनमें बच्चों की सरलता, देवों की रहस्यमयता, ऋषियों की दार्शनिकता सबका समावेश है।

अबतक विश्व की कई भाषाओं में वचनामृत के अनुवाद प्राकाशित हो चुके हैं। बँगला में प्रथम संस्करण के प्रकाशित होने पर स्वामी विवेकानन्द ने श्री 'म' को जो पत्र लिखा था उसका हिन्दी अनुवाद हम अद्वैत आश्रम मायावती, से साभार उद्धृत कर रहें हैं :

देहरादून
२४ नवम्बर १८९७

प्रिय मास्टर महाशय,

आपकी दूसरी पुस्तिका के लिए अनेक धन्यवाद। सचमुच यह विस्मयपूर्ण है। आपका यह कदम बिल्कुल मौलिक है और पहले कभी भी किसी महान् उपदेशक

(शेष पृष्ठ १९ पर)

श्रीरामकृष्ण वचनामृत :

अभिलेखनारम्भ शताब्दी-समारोह के अवसर पर

श्री श्रीरामकृष्णवचनामृत : एक परिदर्शन

डा० विमलेश्वर डे,

(भू० पू०) आचार्य एवं अध्यक्ष,

मनोविज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय

सन् १९८२ ई० का यह वर्ष, भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से निःसृत परम चैतन्य, ऊर्जस्वी एवं प्रेरणापूर्ण आध्यात्मिक परिसंवादों तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा से सम्पन्न वार्ताओं के, कलकत्ता निवासी श्रीमहेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा प्रामाणिक एवं यथावत् अभिलेखन कार्य प्रारम्भ करने के सौ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में, 'श्री श्रीरामकृष्ण वचनामृत अभिलेखनारम्भ शताब्दी-समारोह' के रूप में मनाया जा रहा है। श्रीरामकृष्णदेव से श्रीमहेन्द्रनाथ गुप्त पहलीबार २६ फरवरी, १८८२ ई० को दक्षिणेश्वर में मिले। यह एक ऐतिहासिक मिलन था और इस प्रथम मिलन में ही, श्रीरामकृष्णदेव के प्रेमिल व्यक्तित्व एवं उनके अत्यंत रोचक तथा अनौपचारिक ढंग से बातचीत करने के तरीके से श्रीमहेन्द्रनाथ मोहित हो गये।

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण की अमृतमयी वाणी सुनने सभी तरह के लोग नियमित रूप से आया करते थे और श्रीमहेन्द्रनाथ न केवल धार्मिक, और दार्शनिक बल्कि गृहस्थों के जीवन से सम्बद्ध सांसारिक समस्याओं पर भी सहजतापूर्वक खुलकर बातचीत करते थे। इन दोनों का प्रथम मिलन आकस्मिक रूप से हुआ था किन्तु बाद में यह दर्शनिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महा महत्व के मिलन में परिवर्तित होने वाला था जिसे बाद के वर्षों ने प्रमाणित कर दिखाया। इस मिलन ने महेन्द्र नाथ पर गंभीर प्रभाव डाला और उन्होंने श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से जो कुछ भी सुना था और जो कुछ भी वहां देखा था, उसे दैनन्दिनी (डायरी) के रूप में लिखना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने सप्ताहान्तों एवं पर्व-त्योहारों के अवसर पर दक्षिणेश्वर जाने की आदत डाल ली और कालान्तर में वार्ताकार श्रीरामकृष्णदेव से प्रेमपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिया। यह सम्बन्ध श्रीरामकृष्णदेव के इस संसार से शरीर त्याग करने के अंतिम समय, अगस्त, १८८६ ई० तक बना रहा। उनकी डायरियों ने श्रीरामकृष्ण वचानामृत (मूल रूप से बंगला में श्रीरामकृष्णकथामृत के नाम से लिखित) के प्रथम भाग के सन् १८९२ ई० में प्रकाशन के लिए मूलवस्तु प्रदान की।

स्वामी विवेकानन्द इस ग्रंथ के प्रकाशन से इतना प्रभावित हुए थे कि उन्होंने लेखक की इन

श्रीरामकृष्ण वचनामृत :

अभिलेखनारम्भ शताब्दी-समारोह के अवसर पर

श्री श्रीरामकृष्णवचनामृत : एक परिदर्शन

डा० विमलेश्वर दे,

(भू० पू०) आचार्य एवं अध्यक्ष,

मनोविज्ञान विभाग, पटना विश्वविद्यालय

सन् १९८२ ई० का यह वर्ष, भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के श्रीमुख से निःसृत परम चैतन्य, ऊर्जस्वी एवं प्रेरणापूर्ण आध्यात्मिक परिसंवादों तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा से सम्पन्न वार्ताओं के, कलकत्ता निवासी श्रीमहेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा प्रामाणिक एवं यथावत् अभिलेखन कार्य प्रारम्भ करने के सौ वर्ष पूरे होने के उपलक्ष्य में, 'श्री श्रीरामकृष्ण वचनामृत अभिलेखनारम्भ शताब्दी-समारोह' के रूप में मनाया जा रहा है। श्रीरामकृष्णदेव से श्रीमहेन्द्रनाथ गुप्त पहलीबार २६ फरवरी, १८८२ ई० को दक्षिणेश्वर में मिले। यह एक ऐतिहासिक मिलन था और इस प्रथम मिलन में ही, श्रीरामकृष्णदेव के प्रेमिल व्यक्तित्व एवं उनके अत्यंत रोचक तथा अनौपचारिक ढंग से बातचीत करने के तरीके से श्रीमहेन्द्रनाथ मोहित हो गये।

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण की अमृतमयी वाणी सुनने सभी तरह के लोग नियमित रूप से आया करते थे और श्रीमहेन्द्रनाथ न केवल धार्मिक, और दार्शनिक बल्कि गृहस्थों के जीवन से सम्बद्ध सांसारिक समस्याओं पर भी सहजतापूर्वक खुलकर बातचीत करते थे। इन दोनों का प्रथम मिलन आकस्मिक रूप से हुआ था किन्तु बाद में यह दार्शनिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक महा महत्व के मिलन में परिवर्तित होने वाला था जिसे बाद के वर्षों ने प्रमाणित कर दिखाया। इस मिलन ने महेन्द्र नाथ पर गंभीर प्रभाव डाला और उन्होंने श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से जो कुछ भी सुना था और जो कुछ भी वहां देखा था, उसे दैनन्दिनी (डायरी) के रूप में लिखना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने सप्ताहान्तों एवं पर्व-त्योहारों के अवसर पर दक्षिणेश्वर जाने की आदत डाल ली और कालान्तर में वार्ताकार श्रीरामकृष्णदेव से प्रेमपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर लिया। यह सम्बन्ध श्रीरामकृष्णदेव के इस संसार से शरीर त्याग करने के अंतिम समय, अगस्त, १८८६ ई० तक बना रहा। उनकी डायरियों ने श्रीरामकृष्ण वचानामृत (मूल रूप से बंगला में श्रीरामकृष्णकथामृत के नाम से लिखित) के प्रथम भाग के सन् १८९२ ई० में प्रकाशन के लिए मूलवस्तु प्रदान की।

स्वामी विवेकानन्द इस ग्रंथ के प्रकाशन से इतना प्रभावित हुए थे कि उन्होंने लेखक की इन

शब्दों में दीप्तिमय प्रशंसा की— 'मास्टर,* आपको लाखों धन्यवाद । आपने रामकृष्ण को सही ढंग से पकड़ा है। आह ? केवल कुछ थोड़े लोग ही उन्हें समझ सकते हैं। जब कोई उन विचारों और आदर्शों में, जिनसे इस धरती पर शान्ति की वर्षा हो सकती है, पूर्णतः खो जाता है तब आनन्द से नाचने का मेरा मन करने लगता है। मैं पूरी तरह पागल नहीं हो जाता हूँ, यह आश्चर्यों का आश्चर्य है।' इस ग्रंथ का पाँचवा और अंतिम भाग, ६८ वर्षों की आयु में श्री 'म' के शरीरावसान के कुछ ही दिनों बाद सन् १९३२ ई० में प्रकाशित हुआ। तब से अब तक वचनामृत का न केवल भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में, बल्कि विश्व की कई प्रमुख भाषाओं में भी अनुवाद हो चुका है। इस ग्रंथ की लोक प्रियता का विस्तार इसी तथ्य से जाना जा सकता है कि इसके प्रत्येक खंड के १६ संस्करण अब तक हो चुके हैं। ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है त्यों-त्यों इसके प्रचार और प्रियता में वृद्धि होती जाती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कम से कम भारत वर्ष में, लोकप्रियता की दृष्टि से यह ग्रंथ रामायण और महाभारत के समकक्ष है।

इस ग्रंथ का अंग्रेजी रुपान्तरण स्वामी निखिलानन्द ने किया जो न्यू यॉर्क से सन् १९४२ ई० में प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका ऑल्डस हक्सले जैसे महा मनीषी ने लिखी। हक्सले ने लिखा — 'यह पहला अवसर है जब किसी अवतार-आध्यत्मिक आत्मा -के वचन जिस रुप में कहे गये थे उसी रुप में लिखे गये हैं और लिखे रहेंगे। श्री 'म' (महेन्द्र नाथ गुप्त ने 'म' के नाम से ही यह ग्रंथ लिखा) ने पूरी विश्वसनीयता और विस्तार पूर्वक, अपनी ओर से एक भी शब्द जोड़े बिना, जो कुछ भी उन्होंने स्वयं सुना और अपनी आँखों से देखा उन्हें अभिलिखित किया है। श्रीरामकृष्ण की लीला-सहधर्मिणी श्रीसारदा देवी ने श्री 'म' द्वारा अभिलिखित परिसंवादों को सुनकर कहा था —'उनके निकट तुमने जो कुछ सुना, वे सब सच हैं। इसमें तुम्हें कोई भय नहीं है। एक समय उन्होंने ही ये सारी बातें तुम्हारे साथ कही थीं। इस समय वे ही आवश्यकतानुसार इन्हें प्रकाशित करा रहे हैं! ... एक दिन तुम्हारे मुँह से सुनने पर ऐसा लगा जैसे वे ही ये सारी बातें बोल रहे हैं।'

वचनामृत प्रचलित अर्थ में जीवनी नहीं है। यद्यपि श्रीरामकृष्ण की एक संक्षिप्त जीवन-कथा इसके आरंभ में दे दी गयी है तथापि यह उनके पार्थिव जीवन के अंतिम चार वर्षों (मार्च १८८२— अप्रैल १८८६ ई०) के वचनों एवं कार्य कलापों का मननीय संकलन है। इनके अतिरिक्त, इस ग्रंथ की असाधारण गरिमा और प्रतिष्ठा के कारण वह व्यक्ति जो इसके केन्द्र बिन्दु हैं तथा लेखक, और इन दोनों व्यक्तियों के अद्भुत चारित्र्य हैं।

हेनरी जिम्मर (जर्मन दार्शनिक) ने रामकृष्ण-वचनामृत को सम्मोहक कथा चित्रों का ग्रंथ कहा है। टॉमस मन (जर्मन नोबुल पुरस्कार विजेता) ने, इस ग्रंथ के अध्ययन के उपरान्त, एक जीवित व्यक्ति के प्रत्यक्ष दर्शन का अनुभव किया जिसने प्रगाढ़ रुप से अपने आलोक से उसे आवृत कर लिया। यह स्मरण रखना महत्वपूर्ण है कि उन महापुरुषों में से एक भी श्रीराकृष्णके शिष्य या भक्त नहीं थे। इसके अलावे उन्होंने मूल प्रति का अनूदित रुप पढ़ा था फिर भी उनकी अनुभूति का आस्वाद सच्चा और शुद्ध या अकृत्रिम था

श्री 'म' ने इतनी महान् सफलता कैसे पायी ? इसका प्रधान कारण यह था कि श्री 'म' ने स्वयं को कोई महत्व नहीं दिया, बल्कि उन्होंने अपने आप को सर्वत्र छिपाये रखा। लेकिन एक कुशल फोटो ग्राफर की भाँति वे यह जानते थे कि कैसे और कब अच्छा चित्र लिया जाना चाहिए। शिक्षा, मानवीयता, प्रेम एवं शुद्ध भक्ति का उनके जीवन में विलक्षण समन्वय

*श्री महेन्द्रनाथ गुप्त कलकत्ते के एक विख्यात स्कूल के प्रधानाध्यापक थे।

हो गया था। रामकृष्ण की वाणी और लोक शिक्षा के भाष्यकार होने की अपेक्षा उन्होंने उनका वाहक होना अधिक पसंद किया। श्रीरामकृष्ण ने कहा था—जिसकी भक्ति कच्ची है वह ईश्वर की वाणी और विचार को ग्रहण नहीं कर सकता। जब उसकी भक्ति परिपक्व हो जाती है, वह उन्हें ग्रहण करने के योग्य हो जाता है।' महेन्द्र नाथ गुप्त की ईश्वर तथा अपने गुरु पर पक्की भक्ति थी। इसीसे अपने गुरु के ईश्वरीय संदेश उनके सामने स्वच्छ स्फटिक की भाँति स्पष्ट रुप में प्रकट हुए।

वचनामृत के लेखक की दूसरी विशेषता यह थी कि श्रीरामकृष्ण के अन्य सभी शिष्यों में शैक्षणिक दृष्टि से वे सर्वाधिक देदीप्यमान थे। प्रवेशिका की परीक्षा में उन्होंने द्वितीय स्थान पाया था, एफ.ए. में पाँचवा और बी. ए. में उन्हें तीसरा स्थान मिला था। इतिहास, दर्शन, विज्ञान आदि का उन्होंने गंभीर अध्ययन किया था और गंभीर अध्ययन करने में उनकी रुचि अत्यधिक थी। वचनामृत का प्रत्येक पृष्ठ उनके पांडित्य एवं गहन चिंतनशीलता की छाप लिये हुए है।

संभवत: उनमें कोई आन्तरिक विशेषता — विशेष प्रतिभा— थी जिसने उन्हें श्रीरामकृष्ण के प्रति आकृष्ट कर दिया था। इसलिए प्रथम साक्षात्कार में ही श्रीरामकृष्ण ने बड़े प्रेम से उनसे उनके व्यवसाय, आवास आदि के विषय में पूछताछ की और कहा — 'फिर आना।' इस प्रकार दोनों का सम्बन्ध आरंभ हुआ और अंत तक बना रहा।

श्री 'म' संन्यासी की मानसिकता वाले गृही भक्त थे। इसलिए उनके द्वारा अभिलिखित वृत्तान्त श्रीरामकृष्ण के गृही भक्तों के लिए स्थायी मूल्य और रुचि के हैं। शायद स्वयं गृहस्थ होने के कारण श्री 'म' श्रीरामकृष्ण के उपदेशों की गहनता और उनकी ईश्वरता का बोध करने में समर्थ हो सके।

यद्यपि श्रीरामकृष्ण वचनामृत जीवन-कथा नहीं है, तथापि किसी अन्य ग्रंथ में उनकी ईश्वरता उतनी अच्छी रीति से नहीं झलकती है जितनी उत्तम रीति से इस ग्रंथ में। इसके अध्ययन के क्रम में पाठक/पाठिका अनुभव करता / करती है कि वह अपने आमने-सामने हास्य, प्रेम और करुणा से भरे महा मानव की वाणी सुन रहा/रही है। सांसारिक जीवन-संघर्ष से थका-हारा कोई व्यक्ति जब रामकृष्ण का यह कथन पढ़ता है—'मैं तुमसे सच कहता हूँ। तुम अपने घर के काम-काज करते हो, इसमें कोई बुराई नहीं हैं। लेकिन तुम्हें अपना मन भगवान में लगाये रखना है।' या जब श्रीरामकृष्ण सहास्य कहते हैं—'नहीं, तुम्हें अपनी हर वस्तु क्यों छोड़नी पड़ेगी ? तुम अपनी ... के साथ भली प्रकार थे।' तब वह उत्साह, उमंग और आत्मविश्वास के साथ जीवन-यात्रा में आगे बढ़ने को प्रेरित हो उठता है। आशा और उत्साह के ये शब्द केवल रामकृष्ण के भक्तों के लिए ही नहीं; बल्कि सब के लिए हैं। और जिस व्यक्ति ने उनके जीवनदायी संदेशों और अमृतमय उपदेशों का अभिलेखन इतने सीधे-सरल रूप में किया, जिसने श्रीरामकृष्ण जैसे पुरुषोत्तम में प्रवेश करना सबके लिए सुगम और सुलभ बना दिया उस महान् अभिलेख और परमोज्वल साधक-भक्त श्री 'म' के हम सब शाश्वत और स्थायी ऋणी हैं।

किसी व्यक्ति ने श्रीरामकृष्णदेव से जिज्ञासा की—"सिद्ध पुरुष होने पर कैसी अवस्था हो जाती है ?"

उत्तर में श्रीरामकृष्णदेव ने कहा—"जैसे आलू, बैंगन पक जाने पर नरम हो जाते हैं, वैसे ही सिद्ध पुरुष का स्वभाव भी नरम हो जाता है। उसका सब अभिमान चला जाता है।"

—श्रीरामकृष्ण उपदेश : रामकृष्ण मठ, नागपुर

एक सौ वर्ष पूर्व

प्रथम दर्शन

(मार्च, १८८२)

श्री 'म'

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ।
श्रवणमंगलं श्रीमदाततम् भुवि गृणन्ति ये भूरिदा जना: ।।

श्रीमद्‌भागवत, गोपी गीता, रास पंचाध्याय।

श्रीगंगाजी केपूर्व तट पर कलकते से कोई ६ मील दूर दक्षिणेश्वर में श्रीकालीजी का मन्दिर हैं। यहीं भगवान् श्रीरामकृष्णदेव रहते है। मास्टर सन्ध्या समय पहले-पहल उनके दर्शन करने गये। उन्होंने देखा श्री रामकृष्णदेव के कमरे में लोग चुपचाप बैठे उनका वचनामृत पान कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण कहते हैं "जब श्रीभगवान का नाम एक ही वार जपनं से रोमांच होता है तब निश्चय समझो कि सन्ध्यादि कर्मों की समाप्ति हो जाती है—तब कर्म त्याग का अधिकार पैदा हो जाता है-कर्म आप ही आप छूट जाते हैं। आपनें फिर कहा—सन्ध्या वन्दन का लय गायत्री में होता है और गायत्री का ओंकार में।

श्रीरामकृष्णदेव के कमरे में धूप की सुगन्ध भर रही थी। मास्टर अंग्रेजी पढ़े-लिखे आदमी हैं। सहसा घर में घुस न सकते थे। द्वार पर वृन्दा (कहारिन) खड़ी थी। मास्टर ने पूछा—"साधु महाराज क्या इस समय घर के भीतर हैं?"

उसने कहा—"हाँ वे भीतर हैं।"

मास्टर—ये यहाँ कब से हैं।

वृन्दा—ये वहुत दिनों से है।

मास्टर—अच्छा, तो पुस्तकें खूब पढ़ते होंगे?

वृन्दा—पुस्तकें? उनके मुँह में सब कुछ है।

श्रीरामकृष्ण पुस्तकें नहों पढ़ते यह सुनकर मास्टर को और भी आश्चर्य हुआ।

मास्टर—"अब तो ये सन्ध्या करेंगे? क्या हम भीतर जा सकते हैं? एक वार खबर दे दो न!

वृन्दा—तुम लोग जाते क्यों नहीं? जाओ भीतर बैठो।

मास्टर अपने मित्र के साथ भीतर गये। देखा श्रीरामकृष्ण अकेले तखत पर बैठे हैं। चारो ओर के द्वार बन्द हैं। मास्टर ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और आज्ञा पाकर बैठ गये। श्रीरामकृष्ण ने पूछा, कहाँ रहते हो, क्या करते हो, वराह-नगर क्यों आये, इत्यादि। मास्टर ने कुल परिचय दिया। श्रीरामकृष्ण का मन वीच-बीच में दूसरी और खिच रहा था। मास्टर को बाद में मालूम हुआ कि इसी को 'भाव' कहते हैं। मास्टर—आप तो अब सन्ध्या करेंगे, हम अव चलें। श्रीरामकृष्ण (भावस्थ) नहीं-सन्ध्या-ऐसा कुछ नहीं। मास्टर ने प्रणाम किया और चलना चाहा।

श्रीरामकृष्ण—फिर आना।

× ×

श्रीरामकृष्ण—क्या तुम्हारा विवाह हो गया?

मास्टर—जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण (चौंककर)—अरे रामलाल, अरे अपना विवाह तो इसने कर डाला।

रामलाल श्रीरामकृष्ण के भतीजे और कालीजी के पुजारी हैं। मास्टर घोर अपराधी जैसा सिर नीचा किये चुप चाप बैठे रहे। सोचने लगे, विवाह करना क्या इतना बड़ा अपराध है? श्रीरामकृष्ण ने फिर

पूछा—'क्या तुम्हारे लड़के-बच्चे भी हैं ? मास्टर का कलेजा काँप उठा। डरते हुए बोले-जी हाँ। लड़के-बच्चे हुए हैं।' श्रीरामकृष्ण ने फिर कहा-अरे, लड़के भी हो गये ! मास्टर का अहंकार चूर्ण होने लगा। कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण सस्नेह कहने लगे-देखो, तुम्हारे लक्षण अच्छे हैं, यह सब मैं किसी को देखते ही जान लेता हूँ। अच्छा तुम्हारी स्त्री कैसी है ? विद्या-शक्ति है या अविद्या-शक्ति ?

मास्टर—जी अच्छी है, पर अज्ञान है।

श्रीरामकृष्ण—और तुम ज्ञानी हो ?

मास्टर नहीं जानते ज्ञान किसे कहते हैं और अज्ञान किसे। अभी तो उनकी धारणा यही है कि कोई लिख-पढ़ ले तो मानो ज्ञानी हो गया। उनका यह भ्रम तब दूर हुआ जब उन्होंने सुना कि ईश्वर को जान लेना ज्ञान है और न जानना अज्ञान। श्री रामकृष्ण की इस बात से कि "तुम ज्ञानी हो" मास्टर के अहंकार को फिर धक्का लगा।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा तुम्हारा विश्वास 'साकार' पर है या 'निराकार' पर ?

मास्टर मन-ही-मन सोचने लगे 'यदि साकार पर विश्वास हो तो क्या निराकार पर भी विश्वास हो सकता है ? ईश्वर निराकार है—यदि ऐसा विश्वास हो तो ईश्वर साकार है ऐसा भी विश्वास कभी हो सकता है ? ये दोनों विरोधी भाव किस प्रकार सत्य हो सकते हैं ? सफेद दूध क्या कभी काला हो सकता है ?

मास्टर—निराकार मुझे अधिक पसन्द है।

श्रीरामकृष्ण—अच्छी बात है। किसी एक पर विश्वास रखने से काम हो जायगा। निराकार पर विश्वास करते हो, अच्छा है। पर यह न कहना कि यही सत्य है, और सब झूठ। यह समझना कि निराकार भी सत्य है और साकार भी सत्य है। जिस पर तुम्हारा विश्वास हो उसीको पकड़े रहो।

दोनों सत्य हैं, यह सुनकर मास्टर चकित हो गये। यह बात उनके किताबी ज्ञान में तो थी ही नहीं। उनका अहंकार फिर चूर्ण हुआ पर अभी कुछ रह गया था; इसलिए फिर वे तर्क करने को आगे बढ़े।

मास्टर—'अच्छा वे साकार हैं, यह विश्वास मानो हुआ, पर मिट्टी की या पत्थर की मूर्त्ति तो वे हैं नहीं।

श्रीरामकृष्ण—पत्थर की मूर्त्ति वे क्यों होने लगे ? पत्थर या मिट्टी की नहीं, चिन्मयी मूर्त्ति।

चिन्मयी मूर्त्ति, यह बात मास्टर न समझ सके।

उन्होंने कहा—'अच्छा जो मिट्टी की मूर्त्ति पूजते हैं उन्हें समझाना भी तो चाहिए कि मिट्टी की मूर्त्ति ईश्वर नहीं और मूर्त्ति के सामने ईश्वर की ही पूजा करना ठीक है, किन्तु मूर्त्ति की नहीं।'

श्रीरामकृष्ण (विरक्त होकर) तुम्हारे कलकत्ते के आदमियों में यही तो एक धुन है—सिर्फ लेक्चर देना और दूसरों को समझाना। अपने को कौन समझाये, इसका ठिकाना नहीं। अजी, समझाने वाले तुम हो कौन ? जिनका संसार है वे समझायेंगे। जिन्होंने सृष्टि रची है, सूर्य-चन्द्र-मनुष्य-जीव-जन्तु बनाये हैं, जीव-जन्तुओं के भोजन के उपाय सोचे हैं, उनका पालन करने के लिए माता-पिता बनाये हैं, माता-पिता में स्नेह का संचार किया है—वे समझायेंगे। इतने उपाय तो उन्होंने किये और यह उपाय वे न करेंगे ? अगर समझाने की जरूरत होगी तो वे समझायेंगे क्योंकि वे अन्तर्यामी हैं। यदि मिट्टी की मूर्त्ति पूजने में कोई भूल हो तो क्या वे नहीं जानते कि पूजा उन्हींकी हो रही है ? वे उसी पूजा से सन्तुष्ट होते हैं। इसके लिए तुम्हारा सिर क्यों धमक रहा है ? तुम यह चेष्टा करो जिससे तुम्हें ज्ञान हो-भक्ति हो।

अब शायद मास्टर का अहंकार बिल्कुल चूर्ण हो गया। श्रीरामकृष्ण—तुम मिट्टी की मूर्त्ति की पूजा की बात कहते थे। यदि मूर्त्ति मिट्टी ही की हो तो भी उस पूजा की जरूरत है। देखो सब प्रकार की पूजाओं की योजना ईश्वर ने ही की है। यह

संसार है, उन्होंने यह सब किया है। जो जैसा अधिकारी है उसके लिए वैसा ही अनुष्ठान ईश्वर ने किया है। लड़के को जो भोजन रूचता है और जो उसे सह्य है, वही भोजन इसके लिए माँ पकवाती है; समझे ?

मास्टर—जी हाँ।

× × ×

मास्टर (विनीत भाव से)—ईश्वर में मन किस तरह लगे ?

श्रीरामकृष्ण—सर्वदा ईश्वर का नाम-गुण-गान करना चाहिए सत्संग करना चाहिए-बीच-बीच में भक्तों और साधुओं से मिलना चाहिए। संसार में दिन-रात विषय के भीतर पड़े रहने से मन ईश्वर में नहीं लगता; कभी-कभी निर्जन स्थान में ईश्वर की चिन्ता करना बहुत जरुरी है। प्रथम अवस्था में विना निर्जन के ईश्वर में मन लगाना कठिन है। पौंधे को चारो ओर से रूँधना पड़ता है नहीं तो बकरी चर लेगी।

ध्यान करना चाहिए मन में, कोने में और वन में। और सर्वदा सत्-असत् विचार करना चाहिए। ईश्वर ही सत् अथवा नित्य हैं, और सब असत् अनित्य। इस प्रकार विचार करने से मन से अनित्य वस्तुओं का त्याग हो जाता है!

मास्टर (विनीत भाव से)—संसार में किस तरह रहना चाहिए ?

श्रीरामकृष्ण—सब काम करना चाहिए परन्तु मन ईश्वर में रखना चाहिए।

माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि सबकी सेवा करते हुए इस ज्ञान को दढ़ रखना चाहिए कि ये हमारे कोई नहीं हैं। किसी धनी के घर की दासी उसके घर का कुल काम करती है, उसके लड़के को खिलाती है-जब देखो तब भैयारे भैया रे, करती रहती है, पर मन-ही-मन खूब जानती है कि मेरा यहाँ कुछ नहीं है।

कछुआ रहता तो पानी में है, पर उसका मन रहता है किनारे पर जहाँ उसके अण्डे रखे, हैं। संसार का काम करो, पर मन रखो ईश्वर में।

बिना भगवद्भक्ति पाये यदि संसार में रहोगे तो दिनों दिन उलझनों में फँसते जाओगे और यहाँ तक फँस जाओगे कि फ़िर पिण्ड छुड़ाना कठिन होगा। रोग, शोक, पाप और तापादि से अधीर हो जाओगे। विषय-चिन्तन जितना ही करोगे, बँधोगे भी उतना ही अधिक मजबूत।

हाथों में तेल लगाकर कटहल काटना चाहिए। नहीं तो, हाथों में उसका दूध चिपक जाता है। भगवद् भक्ति रूपी तेल लगाकर संसार रूपी कटहल के लिए हाथ बढ़ाओ।

यदि भक्ति पाने की इच्छा हो तो निर्जन में रहो। मक्खन खाने की इच्छा होती है तो दही निर्जन में ही जमाया जाता है। हिलाने डुलाने से दही नहीं जमता। इसके बाद निर्जन में ही सब काम छोड़कर दही मथा जाता है, तभी मक्खन निकलता है।

देखो, निर्जन में ही ईश्वर का चिन्तन करने से यह मन भक्ति, ज्ञान और वैराग्य का अधिकारी होता है। इस मन को यदि संसार में डाल रखोगे तो यह नीच हो जायगा। संसार में कामिनी-कांचन के सिवा और है ही क्या ?

संसार जल है और मन मानों दूध। यदि पानी में डाल दोगे तो दूध पानी में मिल जायेगा, पर उसी दूध का निर्जन में मक्खन बनाकर यदि पानी में छोड़ोगे तो मक्खन पानी में उतरता रहेगा। इस प्रकार निर्जन में साधना द्वारा ज्ञान-भक्ति प्राप्त करके यदि संसार में रहोगे भी तो संसार से निर्लिप्त रहोगे।

साथ ही साथ विचार भी खूब करना चाहिए। कामिनी और कांचन अनित्य हैं, ईश्वर ही नित्य हैं। रुपये से क्या मिलता है ? रोटी, दाल, कपड़े, रहने की जगह—बस यहीं तक। रुपये से ईश्वर नहीं मिलते। तो रुपया जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। इसीको विचार कहते हैं—समझे ?'

मास्टर—जी हाँ। अभी-अभी मैंने 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक पढ़ा है। उसमें वस्तु-विचार है।

श्रीरामकृष्ण—हाँ, वस्तु विचार। देखो रुपये में ही क्या है और सुन्दरी की देह में भी क्या है।

विचार करो, सुन्दरी की देह में केवल हाड़ मांस, चरबी, मल, मूत्र-यही सब है। ईश्वर को छोड़ इन्हीं वस्तुओं में मनुष्य मन क्यों लगाता है? क्यों वह ईश्वर को भूल जाता है?

मास्टर—क्या ईश्वर के दर्शन हो सकते हैं?

श्रीरामकृष्ण—हाँ, हो सकते हैं। बीच-बीच में एकान्तवास उनका नाम-गुण-गान और वस्तु-विचार करने से ईश्वर के दर्शन होते हैं।

मास्टर—कैसी अवस्था हो तो ईश्वर के दर्शन हों?

श्रीरामकृष्ण—खूब व्याकुल होकर रोने से उनके दर्शन होते हैं। स्त्री या लड़के के लिए लोग आँसुओं की धारा बहाते हैं, रुपये के लिए रोते हुए आँखे लाल कर लेते हैं, पर ईश्वर के लिए कोई कब रोता है?

व्याकुलता हुई कि मानों आसमान पर सुबह की ललाई छा गयी। शीघ्र ही सूर्य भगवान निकलते हैं, व्याकुलता के बाद ही भगवद्दर्शन होते हैं।

विषय पर विषयी की, पुत्र पर माता की और पति पर सती की—यह तीन प्रकार की चाह एकत्रित होकर जब ईश्वर की ओर मुड़ती है तभी ईश्वर मिलते हैं।

बात यह है कि ईश्वर को प्यार करना चाहिए। विषय पर विषयी की, पुत्र पर माता की और पति पर सती की जो प्रीति है, उसे एकत्रित करने से जितनी प्रीत होती है, उतनी ही प्रीति से ईश्वर को बुलाने से इस प्रेम का महा आकर्षण ईश्वर को खींच लेता है।

व्याकुल होकर उन्हें पुकारना चाहिए। बिल्ली का बच्चा मिऊँ-मिऊँ करके माँ को पुकारता भर है। उसकी माँ जहाँ उसे रखती है, वहीं वह रहता है। यदि उसे कष्ट होता है तो बस वह मिऊँ-मिऊँ करता है और कुछ नहीं जानता। माँ चाहे जहाँ रहे मिऊँ-मिऊँ सुनकर आ जाती है।"

(पृष्ठ १२ का शेषांश)

का जीवन लेखक की अपनी मनोवृत्ति से अप्रभावित इस तरह जनसाधारणके समक्ष नहीं लाया गया जैसा आप कर रहे हैं। भाषा भी अत्यंत प्रशंसनीय है। ताजा, तीक्ष्ण और, साथही, सरल और सहज।

मैं अपनी खुशी शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। इन्हें पढ़ते समय मैं सचमुच (पुराने दिनों में) चला जाता हूँ। आश्चर्य है। नहीं? हमारे श्रीठाकुर कितन अद्भुत थे और हममें से प्रत्येक को अद्भुत होना होगा या फिर कुछ नहीं। अब मैं समझ सका हूँ कि क्यों अबतक हममें से किसीने उनका जीवन चरित लिखने की चेष्टा क्यों नहीं की। यह महान् कार्य आपके लिए सुरक्षित था। स्पष्ट है, वे आपके साथ हैं। पूर्ण प्रेम और नमस्कार के साथ,

(ह०) विवेकानन्द

पुनश्च: सुकरात के वार्तालाप सर्वत्र प्लेटो से आच्छादित हैं। आप (वचनामृत में) बिल्कुल परोक्ष हैं। फिर, नाटकीय भाग तो अत्यंत सुन्दर है। सभी इसे बहुत पसन्द करते हैं—यहाँ और पश्चिम में भी।

(ह०) विवेकानन्द

स्वामी विज्ञानानन्द के सान्निध्य में

—राय नगेन्द्र प्रसाद

[भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के लीला-सहचरों एवं साक्षात् संन्यासी शिष्यों की शृंखला में स्वामी विज्ञानानन्द महाराज अन्यतम थे। वे आत्मसंस्थ एवं ब्रह्मज्ञ पुरुष थे। आत्म-विज्ञापन से विरत एक गुप्तयोगी के रूप में वे बहुत दिनों तक रामकृष्ण मिशन, इलाहाबाद के संचालक- सचिव थे।

श्रीरामकृष्णदेव के लीला-पार्षद् एवं साक्षात् शिष्य स्वामी अद्भुतानन्द जी (लाटू महाराज) की जन्म भूमि (छपरा जिला) के ही निवासी और स्वामी विज्ञानानन्दजी के गृही शिष्य श्री राय नगेन्द्र प्रसाद जी को अपने गुरु के सान्निध्य-संपर्क में लम्बे अरसे तक रह कर उनका सहज-स्नेह पाने का विरल सौभाग्य प्राप्त था।

प्रस्तुत संस्मरण में श्री प्रसाद ने स्वामी विज्ञानानन्द जी के तपोनिष्ठ व्यक्तित्व का बड़ा ही हृदयावर्जक वर्णन किया है।]

—सम्पादक

मैं बिहार के छपरा जिले का निवासी हूँ। मेरा कर्मक्षेत्र है इलाहाबाद। मेरे जीवन का अधिकांश—पचास वर्षों से भी अधिक—इलाहाबाद में व्यतीत हुआ है। आज भी यहाँ हूँ। जितने दिनों तक कार्यक्षमता बनी रहेगी, उतने दिन यहीं काटना चाहता हूँ। यह मेरी स्वतंत्र इच्छा का व्यापार नहीं है, यह मेरे गुरुदेव का—जिन्होंने मेरे जीवन के धर्म और कर्म को एक कर दिया है—आदेश-पालन है।

मेरे गुरुदेव श्रीरामकृष्णदेव के अन्यतम् पार्षद् स्वामी विज्ञानानन्दजी महाराज थे। इलाहाबाद के मुट्ठीगंज मुहल्ले में स्थित श्रीरामकृष्ण मिशन द्वारा परिचालित होमियो पैथिक दातव्य चिकित्सालय के माध्यम से मैं सर्वप्रथम १९२४ ई० में महाराजजी के संस्पर्श में आया। मैं तब तेइस वर्षों का था। उस चिकित्सालय का कार्य-भार ब्रह्मचारी पंचानन के ऊपर था, जिन्हें महाराजजी 'देवता' कहते थे। किस प्रकार पंचानन महाराज से मेरा परिचय हुआ, यह कथा यहाँ विस्तार पूर्वक कहने की आवश्यकता नहीं है। प्रासंगिक कथा इतनी ही है कि किसी घटना के संदर्भ में पंचानन महाराज ने एक दिन उस चिकित्सालय के कार्य देखने-सुनने में मेरी सहायता और सहयोगिता चाही। चिकित्सालय में उन दिनों कार्य-कर्त्ताओं का नितान्त अभाव था। मुझे होमियोपैथी का थोड़ा ज्ञान था। जनहित के इस कार्य में मैं सानन्द लग गया। इलाहाबाद हाई कार्ट में नौकरी करता था, समय-समय पर डिस्पेंसरी के कार्य में पंचानन महाराज की सहायता करता। इसी माध्यम से विज्ञानानन्दजी महाराज के सम्पर्क में आया। किन्तु आरम्भ में, प्रायः एक वर्ष तक, मैंने उन्हें कम-सम देखा, डिस्पेंसरी के विषय में वे कभी कुछ कहते हैं, मैं सुनता हूँ, मात्र इतना ही। उनके साथ मेरा निकट सम्पर्क इसके और बाद में हुआ। इस संयोग स्थापना का सूत्रपात हुआ १९२५ ई० की एक घटना के क्रम मे। वह एक अद्भुत घटना थी।

उस समय नेपाल से अवकाश प्राप्त एक सिविल सर्जन—कुमुद बाबू—इलाहाबाद आये। जहाँ तक स्मरण होता है उनकी उपाधि थी 'वंदोपाध्याय'। उन्होंने दातव्य चिकित्सालय के संचालन का भार लेना चाहा। उन्हें होमियोपैथी का भी ज्ञान था। महाराज जी सहमत हो गये। कुछ दिनों तक कार्य-कर्म चलने के उपरान्त पंचनान महाराज के साथ कुमुद बाबू की अनबन हो गयी। कुमुद बाबू असहिष्णु प्रकृति के व्यक्ति थे। वे बीच-बीच में पंचानन महाराज के विरुद्ध महाराज जी के यहाँ नालिश करते रहते थे। इन सब अभियोगों को सुनकर एक दिन

महाराज जी ने पंचानन महाराज को कुछ कहा था। इसके बाद ही पंचानन महाराज जो प्रातःकाल डिस्पेंसरी से गये सो फिर आश्रम में लौटकर आये नहीं। दोपहर में भोजन के समय उन्हें नहीं देखकर महाराज जी ने सेवक बेनी से जिज्ञासा की—'देवता कहाँ हैं ?' काफी खोज-ढूँढ़ हुई, डिस्पेंसरी में और अन्यत्र, किन्तु उनका कहीं पता नहीं चला। समझा गया वे चले गये हैं। (अनेक वर्षों के बाद उनका पता मिला, किन्तु वे फिर लौट कर आश्रम नहीं आये।) महाराज जी गंभीर हो गये। उसी दिन उन्होंने कुमुद बाबू को खबर दे दी कि उन्हें अब और डिस्पेंसरी आने की आवश्यकता नहीं है। इस घटना के बाद मैं महाराज जी के सामने उपस्थित हुआ। मुझे देखकर उन्होंने कहा, 'मैंने चिकित्सालय बन्द कर देने का निर्णय किया है।' मैंने तब कोमल कंठ से अनुनय करते हुए कहा—'महाराज, इस डिस्पेंसरी से अनेक गरीब लोगों का उपकार होता है, बन्द कर देना क्या ठीक होगा ?' तब उन्होंने कहा—'अच्छा, खुला रख सकता हूँ किन्तु एक शर्त पर, लालाजी (इसी नाम से वे मेरा सम्बोधन करते थे), यदि आप इन सब दायित्वों को ग्रहण करें।' सुनकर पहले थोड़ा भय हुआ। कहा—'महाराज, यह कैसे संभव होगा ? मैं तो कोर्ट की नौकरी करता हूँ। वहाँ देर से जाने का नियम नहीं है। तब डिस्पेंसरी के लिए कितना समय निकाल पाऊँगा ? अनेक रोगी आकर लौट जायेंगे, दवा नहीं पायेंगे। इस तर्क को स्वीकार कर महाराज जी ने कहा—'ठीक बात है। इसी से तो कहता हूँ, उसे बन्द कर दूँगा। एक शर्त पर ही उसे खुला रख सकूँगा, जिसे पहले कहा है।' महाराज जी को बराबर देखा है, ऐसे ही स्पष्ट वक्ता हैं, एक बात के आदमी हैं। जो कहेंगे उससे टसमस नहीं होंगे। अन्त में कुछ विचार कर कहा—'महाराज जी, आपने जो कहा, वही होगा। मैंने भार लिया। आफिस में प्रयास कर देखूँगा कि किंचित् विलम्ब से जाने की अनुमति मिल पाती है या नहीं।' महाराज जी मेरी बात सुनकर प्रसन्न हुए और उनके मुख मंडल पर प्रसन्नता की आभा फैल गयी। . . . .

तब से—वह १९२५ ई० का जून या जुलाई होगी—रामकृष्ण मिशन के इस दातव्य चिकित्सालय के कार्यों का दायित्व-निर्वाह कर रहा हूँ। जब तक नौकरी थी, तब तक दोनों ओर देखना पड़ता था। १९६० ई० में हाई कोर्ट की नौकरी से अवकाश-ग्रहण कर लिया है तब से निश्चिन्त मन से यह कार्य कर रहा हूँ।

डिस्पेंसरी का दायित्व लेने के उपरान्त महाराज जी का दर्शन नियमित रूप से होता था। मैं मुट्ठीगंज-आश्रम के निकट ही रहता था। अपराह्न में आश्रम जाता था। क्रमशः यह नित्य के अभ्यास में परिणत हो गया। महाराजजी के समीप कुछ भक्त आते थे (उनकी संख्या खूब अधिक नहीं होती थी), कथा-वार्ता होती थी। मैं सुनता था। सामान्यतः वे हल्के मन से बातें और हँसी-ठट्ठा करते थे। आध्यात्मिक प्रसंग की विस्तृत चर्चा नहीं होती थी। फिर भी किन्हीं की कोई विशेष आध्यात्मिक जिज्ञासा होने पर वे महाराजजी से एकान्त में निवेदन करते थे। महाराजजी भी उन्हें अलग ले जाकर जो कहने योग्य होता, कह देते थे। जो उनके समीप आते उन्हें वे चाय पिलाते। नौकर बेनी प्याला, चाय, चीनी, एवं गरम जल ला देता; महाराजजी अपने हाथों से प्याला आदि को गरम पानी से धोकर जिसकी जितनी चीनी लेने की आदत होती उतनी चीनी मिला चाय बनाकर देते थे। यह कार्य उन्हें नियमित रूप से करते देखता था। वहाँ विशेष ईश्वरीय प्रसंग नहीं होता। मैं भी अपना कोई प्रश्न नहीं करता था, किन्तु महाराजजी के सान्निध्य और उस आश्रम के प्रति एक विशेष आकर्षण का बोध होता था। लगता था, जैसे आश्रम में प्रवेश करने मात्र से ही मेरा मन शान्ति से भर जाता था। महाराजजी के ठाकुर घर और आश्रम में जैसे एक सघन आनन्द और शान्ति का निवास था। वह वर्णनीय नहीं, अनुभव की वस्तु थी। आश्रम से बाहर आने पर लगता था कि वहाँ के परिवेश और बाहर के परिवेश में कितना अन्तर है।

महाराज जी के आश्रम में मैंने जाना-आना शुरू किया तो उसके साथ ही मेरे जीवन की कठिनाइयाँ एवं जटिलताएँ भी मानो क्रमशः समाप्त होने लगीं। ऑफिस

देर से जाने का मेरा विचार था। सबेरे में डिस्पेन्सरी के कार्य के कारण वहाँ जाने में देर होती। यह बात ऊपर वाले को बता देने से उन्होंने इसे सहज मन से ग्रहण किया। मसला इतनी आसानी से हल हो जायगा, यह मैंने सोचा नहीं था। सबेरे उठकर जल्दी-जल्दी डिस्पेंसरी चला जाता था। महाराज जी ने आश्रम से मेरे लिए चाय और जलपान डिस्पेंसरी में भिजवा देने की व्यवस्था कर दी थी। सुबह में खाने-पीने की व्यवस्था में समय नष्ट नहीं हो पाने से डिस्पेंसरी में अधिक काल तक लगातार कार्य कर पाता था। फिर उधर ऑफिस के अधिकारी, पता नहीं क्यों, मेरे ऊपर अधिक प्रसन्न हो उठे। प्रसन्न होकर कार्य बढ़ा दिया। उसके साथ ही दायित्व भी बढ़ गया। मेरे ऊपर अधिक गुरुत्वपूर्ण कार्यों का भार दिया गया, जो मेरे लिए कठिन था। कैसे सँभालूँगा, समझ नही पाता था। किन्तु आश्चर्य का विषय। कार्य क्षेत्र में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई। कहाँ से मेरे भीतर नयी कार्य-शक्ति आ गयी! तब प्रायः ही मेरे मन में होता था कि कौन मेरे लिए सब काम ठीक-ठीक कर लेता है। तदुपरान्त ऊपर के अधिकारी ने मेरे प्रति प्रीतिमय होकर मुझे एक स्थान पर रखना चाहा, जिस दफ्तर में रहने से फिर मेरे लिए देर से ऑफिस जाना संभव नहीं होता। साधारण हिसाब से यह काम्य कार्य था, किन्तु इस कार्य के साथ अनेक प्रकार के प्रलोभन जुटे थे और उस दृष्टि से बदनामी की आशंका भी थी। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। अंत में वह मुश्किल भी हल हो गयी, मुझे उस दफ्तर का भार नहीं लेना पड़ा। क्रमशः मुझे यह स्थिर विश्वास हो गया कि यह सब महाराज जी की कृपा है। उनकी दया से अमंगल मेरा स्पर्श नहीं कर पायगा।

एकबार—जहाँतक स्मरण होता है, वह १९२८ ई० थी—ऑफिस में एक तार मिला। घर से आया है; उसमें लिखा है; आपकी पत्नी गंभीर रूप से बीमार हैं। तुरत चले आइए। ऑफिस से लौटते आश्रम गया, महाराज जी के सामने तार धर दिया। महाराज जी ने उसे एक नजर में पढ़कर स्वयं हँसना आरम्भ कर दिया। उन दिनों हमलोग तार से काफी डरते थे। अत्यंत आवश्यक कार्य नहीं होने पर लोग तार नहीं करते थे। और इस धारणा से तार का अर्थ ही लगाया जाता था कि परिस्थिति अत्यंत आशंकाजनक है। इसी से मैं महाराज जी की हँसी देखकर विमूढ़ हो गया। मेरी इस अवस्था पर वे हँसते हैं! थोड़ी देर बाद ही महाराज जी ने हँसी रोककर कहा—'आप जाना चाहते हैं, जाइए, किन्तु जाने पर आप देखेंगे कि आपकी पत्नी स्वस्थ, सबल हैं और घर-बाहर करती हैं। चिन्ता की कोई बात नहीं है।' गाँव जाने पर सचमुच देखा, वे स्वाभाविक रूप से गृह कार्य कर रही हैं। बात क्या है, पूछने पर पता चला कि उन्हें एक बुरे ढंग का घाव हो गया था। सभी इससे डर गये थे। तार भेजने के बाद वह घाव स्वयं बैठ गया और वे स्वस्थ हो गयीं। समझ गया, महाराज जी सब कुछ देखते—जानते हैं। यह विश्वास दृढ़ मूल हुआ तीन-चार वर्ष बाद घटने वाली एक और घटना से। उस बार भी इसी प्रकार का एक तार आया था उसमें लिखा था—'पिताजी गंभीर पीड़ा से आक्रान्त हैं, तुरंत चले आइए।' पहले की तरह इस बार भी तार उनके सामने रखता हूँ। किन्तु, इस बार वे हँसे नहीं, गंभीर हो गये। कुछ क्षणोपरान्त बोले—'तार आया है, आप गाँव चले जाइए। यदि कोई दवा ले जाने की जरूरत हो तो डिस्पेन्सरी से ले जाइए।' किन्तु महाराज जी ने यह नहीं कहा कि कोई भय नहीं है। और उन्होंने जो डिस्पेन्सरी से दवा ले जाने की अनुमति दी, इसी से तार पाने पर मेरे मन में चिन्ता हो गयी। किन्तु मैंने महाराज जी के सामने यह बात कही नहीं। उस बार जो आशंका थी, वही हुई। पिताजी चल बसे। महाराज जी इसे जानने के कारण ही गंभीर हो गये थे। इसी से उन्होंने मुझे आश्वासन के शब्द नहीं कहे।

१९३४ ई० के बिहार के दारुण भूकम्प में मेरे गाँव का घर धूलिसात् हो गया। वहाँ नये गृह-निर्माण की व्यवस्था के समय परिवार के सदस्यों को इलाहाबाद लाने की आवश्यकता होगी, यह सोचकर मैंने बेनी से

एक किराये का मकान ढूँढ़ने को कहा। बेनी से यह खबर पाकर महाराज जी ने मुझसे कहा—'आपको मकान ढूँढ़ने की जरूरत नहीं है। यहाँ आने पर आपका परिवार आश्रम में ही रहेगा। तब, जहाँ तक हो सके जल्दी अपना घर तैयार कर लीजिएगा। छः महीने के भीतर ही यह कार्य समाप्त हो जाना चाहिए। घर तैयार हो जाने पर वे लोग चले जायँगे।' यह सुनकर सोच में पड़ गया। महाराज जी किसी स्त्री को आश्रम के प्रांङ्गण में रहने नहीं देते, मेरे समय में ऐसा व्यतिक्रम क्यों करते हैं? मेरे परिवार में छः-सात स्त्रियाँ और अनेक बच्चे रहते हैं। इसके अतिरिक्त आश्रम में स्त्रियों के रहने से भी अनेक असुविधाएँ होंगी। फिर छः महीनों में नया घर बन जायगा, यह भी किस बूते पर कहा जाय—ये ही सारी चिन्ताएँ मन में उपजने लगीं। किन्तु मुझे अधिक दिनों तक सोचना नहीं पड़ा। समस्या का समाधान हो गया आश्चर्यजनक रूप से। गाँव के एक पड़ोसी ने स्वयं अपनी ओर से प्रस्ताव कर मेरे परिवार के लिए अपना घर छोड़ दिया और तबतक रहने दिया जबतक नया घर नहीं बन गया। अतः इलाहाबाद में भाड़ा का मकान फिर ढूँढ़ना नहीं पड़ा। उन पड़ोसी ने जो सद्‌व्यवहार किया वे मेरे साथ बहुत दिनों से शत्रुता करते आ रहे थे। हठात् उनके व्यवहार में जो यह परिवर्त्तन हुआ, यह उदारता आयी, वह विस्मयपूर्ण थी। इस सहजता से समस्या का अंत होगा इसकी कल्पना मैंने नहीं की थी। मुझे समझते देर नहीं हुई कि महाराज जी की कृपा से ही यह संभव हुआ है।

इस घटना के एक वर्ष बाद महाराजजी से मेरी दीक्षा हुई। पूजनीय शैलेन महाराज (स्वामी सत्यात्मानन्द) ने एक दिन मुझसे कहा—'महाराजजी तो अभी दीक्षा दे रहे हैं, आप उनसे प्रार्थना कर देखिये न!' उनकी उस बात से अनुप्राणित हो, सुयोग देखकर मैंने महाराजजी से दीक्षा देने की प्रार्थना की। सुनते ही महाराज जी ने कहा—'क्या आप पागल हो गये हैं? आप दीक्षा लेकर क्या करेंगे? आप जो कार्य कर रहें हैं, उससे ही सब होगा।' मेरे मन में हुआ कि अब मेरी दीक्षा नहीं होगी। महाराजजी मुझे आश्रय नहीं देंगे, इसीसे यह बात मुझसे कही। निश्चय ही मेरी मनोवेदना महाराजजी ने जान ली थी। इस वार्तालाप के समाप्त होने पर एक शाम को मेरे घर आकर बेनी ने खबर दी—'महाराजजी ने कहा है कि मैं कल सवेरे गंगा-स्नान कर आश्रम आऊँ। क्यों, सो उसने नहीं कहा। शीघ्र ही मैं शैलेन महाराज के यहाँ गया। उनसे पूछने पर मालूम हुआ कि महाराज जी कल (१५ जून, १९३५ ई०) सवेरे मुझे दीक्षा देंगे। पूजनीय शैलेन महाराज से पूछा था, साथ में क्या ले जाऊँगा? उन्होंने कहा था, यदि महाराज जी ग्रहण न भी करना चाहें; तब भी मैं दक्षिणा स्वरूप कुछ निवेदन करूँ। यथा समय आश्रम के ठाकुरगृह में मेरी दीक्षा हुई। उन्होंने मुझे श्री श्री ठाकुर श्रीश्री माँ के साथ एक अपनी भी फोटो दी। मंत्र, ध्यान और प्रार्थना की रीति मेरे लिए अँग्रेजी में एक कागज पर लिख रखी थी। उसे मुझे दिया। कागज में तारीख के साथ उनका हस्ताक्षर है। मुझे नया जन्म-लाभ हुआ। दीक्षा के अन्त में महाराज जी के चरणों पर प्रणामी स्वरूप कुछ रुपये रखें थे। कितने रुपये थे, आज ठीक से स्मरण नहीं हो रहा है, संभवतः पाँच रुपये थे।

महाराज जी कितने बड़े योगी पुरुष थे, यह सहज ही नहीं समझा जा सकेगा। वे गुप्तयोगी थे। अपने को छिपाकर रखते थे। फलतः बाहर के लोग अनुमान नहीं कर पाते। वे सरल एवं बालकों की तरह रंग-तमाशा पसन्द करते थे। कभी-कभी देखा जाता कि बेनी और बड़े मियाँ (जो आमश्र के लिए चन्दा एकत्र करते थे) के साथ खूब हँसी-ठट्ठा कर रहे हैं। उनके घर से ठहाके की आवाज सुनाई पड़ती थी। इस कार्य में ऊँच-नीच का भेद-ज्ञान उनमें नहीं था। वे देखते थे मन। महाराज जी किसी प्रकार का गोलमाल सहन नहीं कर पाते थे। आश्रम के बाहर छोटे बच्चों द्वारा शोरगुल करने पर वे स्वयं उन्हें धमकाकर बाहर कर देते थे। फिर किसी-किसी के रो पड़ने पर वे बेनी के द्वारा उसे बुलाकर बताशा इत्यादि देकर चुप कराते थे। महाराज जी का हृदय था प्रेमपूर्ण। हमलोगों के प्रति उनकी गंभीर प्रीति थी, किन्तु बाहर से वह अप्रकट थी। वह भीतर-भीतर अनुभव करने की वस्तु थी।

महाराज जी की जीवन-यात्रा जिस प्रकार कठोर थी, उसी प्रकार उनमें व्यावहारिक शीलता भी थी। उनकी शिष्टाचार-बोधक भी बड़ा सुनिश्चित थी। 'आप-आप' कहने से जो अर्थ निकलता है, वह उनमें दिखावा भी नहीं था। वे प्रायः सब को 'आप' कहकर सम्बोधित करते थे। रास्ते में किसी परिचित को देखने पर पहले से ही हाथ जोड़कर नमस्कार करते। कई दिन उन्होंने मुझे भी इसी प्रकार नमस्कार किया है। इससे मैं कुछ अस्वस्ति-बोध करता था। उनसे कहा था—'महाराज आप मुझे 'आप' कहते हैं, नमस्कार करते हैं, इससे मुझे दोष होगा। बहुत कहने पर उन्होंने नमस्कार करना तो छोड़ दिया किन्तु 'आप' कहना नहीं छोड़ा। यह 'आप' कहना उनकी एक नीति थी। महाराज जी दूसरे का मुखापेक्षी होना पसन्द नहीं करते थे। इच्छा करने मात्र से ही हमलोग डिस्पेंसरी के लिए रेड क्रॉस सोसाइटी की सहायता पा जाते थे। किन्तु वे रोकते थे। कहते थे, उनलोगों की सहायता लेने पर उनलोगों की अनेक प्रकार की बातों के अनुसार चलना होगा। उनकी सहायता की शर्तों को मानकर चलने से हमलोगों का मनःपूत नहीं होगा। इस क्षेत्र में सहायता नहीं लेना ही अच्छा।

उनकी शिशु तुल्य सरलता के अनेक चित्र आज याद आ रहे हैं। कहीं जाने की योजना बनाने पर वे एक-एक आदमी को बता देते थे। जो उनके समीप आता, उसी को इस विषय में बताते—ठीक जैसे छोटे बच्चे करते हैं। इक्के से कहीं जाना होता तो बेनी को इस तरह पुकार कर गाड़ी लाने कहते, जिसका आकार छोटा हो, फिर घोड़ा बिल्कुल तेज न चले। पहले काशी में एक बार वे तेज घोड़ा वाले इक्के से गिर गये थे। उस बार काफी कष्ट हुआ था। इसीसे यह सावधानता। इक्का आने पर उनका मन बच्चों की तरह हो उठता था। ट्रेन से कहीं जाना होता तो एक-दो घण्टा पहले ही स्टेशन पर जा कर बैठ जाते थे। यह भी उनके बाल-स्वभाव का एक निदर्शन था।

सांसारिक वस्तुओं के प्रति हमलोगों में प्रचण्ड आकर्षण है। किसी वस्तु के खो जाने पर हमलोग अधिकार हो जाते हैं, वस्तु का अभाव असहनीय लगता है। इस सम्बन्ध में आश्रम की एक घटना से कुछ शिक्षा पायी थी। एक बार एक परिचित महाराज जी को अनुपस्थित पाकर आश्रम से काफी लकड़ी—प्रायः दो-तीन मन—उठा ले गये। यह कार्य मुझे बहुत बुरा लगा। मन में हुआ, महाराजजी की सरलता से ये लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के उपाय ढूँढ़ते हैं। बेनी से कहा कि यह महाराज जी को बता दे। बेनी ने यथासमय मुझे खबर दी कि महाराज जी ने सब सुन लिया, किन्तु कुछ कहा नहीं। तब मैंने बेनी को कहा—'तुम पंडित से कहो कि यदि वे अपना भला चाहते हैं तो आश्रम की लकड़ी लौटा दें। मैं इस कार्य को सहज ही नहीं छोड़ूँगा।' बेनी को इस विषय में नरेन्द्र बाबू (नरेन्द्र नाथ मित्र, महाराज जी के अन्यतम गृही भक्त) के साथ परामर्श करते हुए कहा। किन्तु इस विषय को सुनकर भी नरेन्द्र बाबू ने महाराज जी के सामने इस प्रसंग में कुछ नहीं कहा। केवल बेनी को कहा—'हाँ-हाँ, लालाजी ही ठीक आदमी हैं। ये हाईकोर्ट में काम करते हैं, इनके दिन में एक विवाद रहता है। नरेन्द्र बाबू की बात में उपहास का पुट था। यह मैं समझ गया। तब मुझे चैतन्य हुआ। इसी से तो जिनकी चीज गयी वे तो बिन्दु मात्र विचलित नहीं हुए। वे सम्पूर्ण निर्विकार हैं। वह लकड़ी मेरी दृष्टि में मूल्यवान है, महाराज जी के आगे उसका कोई मूल्य नहीं है।

महाराज जी सत्यनिष्ठा और समय की पाबंदी पर विशेष जोर देते थे। वे अपनी बात में हिलडोल नहीं होने देते थे। दूसरे से भी यही आशा करते थे। निर्दिष्ट समय पर किसी के नहीं आने पर वे विरक्त हो जाते थे। उससे कहते थे, 'काला आदमी', 'ब्लैक मैन' आदि। कर्मक्षेत्र में शृंखला चाहिए और शृंखला का एक प्रधान अंग है समयानुवर्तिता (समय की पाबन्दी) महाराज जी के आचरण से यह सीख मिलती थी।

महाराज जी वैसे मिताहारी थे। रात में केवल दाल-रोटी से उनका काम चल जाता था। दिन के भोजन में भी दोपहर का नाश्ता वे नहीं लेते थे। किन्तु कभी-कभी वे खूब खा लेते थे। महाराज जी का एक प्रिय खाद्य

पदार्थ था सत्तू। मेरे गाँव जाने के समय वे मुझ से सत्तू लाने को कहते। केवल एक इसी पदार्थ की बात कहते। देखा है, वे केवल सत्तू में पानी मिलाकर खा लेते थे—चीनी या कोई अन्य वस्तु मिलाते थे या नहीं, स्मरण नहीं है। एक बार गुरु पूर्णिमा के दिन मैंने लड्डू लाया था। महाराज जी ने उस वस्तु की प्रशंसा कर उसे खाया था।

पहले ही कह चुका हूँ, महाराज जी की आध्यात्मिक जीवनचर्या की बात साधारण लोगों को ज्ञात नहीं थी। बाहर से तो पता ही नहीं चलता था। जो भीतर की बात जानते थे, वे ही उसे समझ पाते थे। वैसे रात के साढ़े आठ बजे वे अपने घर का दरवाजा बन्द कर लेते थे और सुबह साढ़े सात बजे घर से बाहर आते थे। साधारण दृष्टि से लगेगा कि वे सारी रात सोते हैं। रात्रि का अधिकांश समय वे ईश्वर के ध्यान में काटते थे, यह बात कितने लोग जानते थे? एक दिन बातों के क्रम में यह तथ्य मैं जान पाया। आवश्यकता पड़ने पर मैं उनकी बीमारी की चिकित्सा करता। एक बार अस्वस्थता के समय लक्षण मिलाने के क्रम में मैंने जिज्ञासा की : 'महाराज, आपको नीद अच्छी आती है?' उत्तर में उन्होंने कहा—'रात में तो मैं विशेष सोता नहीं, चार बजे के करीब सोता हूँ। उस चार बजे के बाद अच्छी नींद आती है।' उसी दिन समझा, वे रात मुख्यत: ध्यान में काटते हैं। और सोने का समय चार से साढ़े सात—मात्र साढ़े तीन घण्टा!

महाराज जी की ध्यान-धारणा सब एकान्त—निर्जन एकान्त में होती थी। प्रयाग के संगम पर कभी-कभी जाते थे—वह भी अकेला। और महादेव के मन्दिर भी जाते थे। भीड़ या मेला के समय नहीं, जब भीड़ नहीं होती, उसी समय जाते। महाराज जी भीड़ पसन्द नहीं करते थे।

महाराज जी की चिकित्सा मैं करता था, यह बात मैंने कही है। वे मेरे द्वारा दी गयी दवा खाते थे। किन्तु अन्य बीमारियों के समय मैं कुछ नहीं करता था। उस बार उनका शरीर-त्याग होगा, यह वे जानते थे। शरीर-त्याग की इच्छा भी प्रबल हो उठी थी। उस समय किसी भी तरह की चिकित्सा का उन्होंने प्रयोग नहीं किया।

इलाहाबाद में उनका शरीर-त्याग हो, यह वे चाहते थे। उन्होंने कह रखा था—रोग की बढ़ा-बढ़ी होने पर बेलुड़ मठ में खबर नहीं देनी है। ऐसा होने पर चिकित्सा के लिए कलकत्ता ले जाया जायगा—यह उनको आशंका थी।

जहाँ तक स्मरण होता है, १९३८ ई० के अन्त में कलकत्ता जाने से पहले काशी से कार पर महाराज जी की स्वास्थ्य-परीक्षा करने डॉ० मजुमदार इलाहाबाद आये थे। काशी के सेवाश्रम से उन्हें भेजा गया था। मुट्ठीगंज आश्रम के सामने आकर उनकी मोटर गाड़ी ने हॉर्न दिया। महाराज जी ने तब बेनी को बाहर यह देखने को भेजा कि क्या बात है। बेनी ने आकर खबर दी, काशी से डॉ० मजुमदार उनके स्वास्थ्य की परीक्षा के लिए आये हैं। तदुपरान्त डॉ० मजुमदार ने भीतर आ देख-सुन कर लाइकोपोडियम (२००) दवा का निर्देश किया। उस दिन मेरे आश्रम आते ही उन्होंने कहा—'जानते हैं, आज काशी से एक विख्यात डाक्टर आये थे, उन्होंने मुझे लाइकोपोडियम (२००) खाने को कहा है।' इसके बाद थोड़ा हँसकर उन्होंने फिर कहा—'अच्छा, लाला जी, आपने यह दवा तो कई बार दी है, उससे कुछ काम हुआ है क्या?' मैंने कहा नहीं महाराज, उससे कोई विशेष उपकार तो नहीं हुआ। लेकिन, महाराज, पहले की अवस्था से कुछ परिवर्तन हुआ है। डॉ० मजुमदार ने जब लक्षण मिलाकर यह दवा दी है, तब इस बार यह फलप्रद होगी। उन्होंने निश्चय ही समझ-बूझ कर दवा दी है।' महाराज जी ने दवा रख जाने को कहा। निश्चय ही मैं यह नहीं जानता कि उन्होंने दवा खायी या नहीं।

ठीक एक सप्ताह के बाद डॉ० मजुमदार पुनः आये। वे ऐसा कह भी गये थे। आश्रम के सामने पहली बार की भाँति ही हॉर्न बज उठा। महाराज जी ने इस बार

बेनी के द्वारा कहला दिया कि वे ठीक हैं, जाँच करने और औषध देने की आवश्यकता नहीं है। डॉ० मजुमदार ने इस बार भीतर आने का सुयोग नहीं पाया, अन्त में वहीं से लौट गये।

महाराज जी का शरीर भीतर से टूट गया था। श्री श्रीठाकुर के जितने कार्य करणीय थे, उन्हें सम्पन्न करने के लिए ही मानो उन्होंने बलपूर्वक शरीर को बचाये रखा था। श्री श्रीठाकुर का मन्दिर बनने के बाद नये मन्दिर में उनकी प्रथम तिथि पूजा के समय महाराज जी पहले की तरह बेलुड़ मठ गये। उस बार जब कलकत्ते से वापस आये, तब महाराज जी की आखों और मुख-मंडल पर एक परम प्रशान्ति का भाव फैला हुआ था। मुझे याद है कि आश्रम आने पर किस प्रकार एक-एक कर उन्होंने कुरता, टोपी इत्यादि खोल कर फेंक दी थी। उन वस्तुओं के प्रति उनका आचरण ऐसा था मानो वे भारमुक्त, दायित्व-मुक्त हो गये हो। जिस प्रकार अवज्ञा के भाव से उन्होंने अपने वस्त्र-परिधान आदि को बाहर फेंक दिया, उसी प्रकार उसी भाव से अपने शरीर का त्याग करने को भी वे प्रस्तुत हैं, यह बात उस समय भी समझ में नहीं आयी, अथवा समझने की चाह ही नहीं की। किन्तु उन्होंने इसका आभास दे दिया था।

कलकत्ते से लौटने पर उन्होंने खाना-पीना एक प्रकार से छोड़ ही दिया था। वार्ली-जल और चाय के अलावे वे विशेष कुछ खाते नहीं थे। अन्त में रोग के बढ़ने पर उन्हें बहुत कष्ट हुए। गलत कह गया, उन्होंने कोई कष्ट नहीं पाया, कष्ट उनके शरीर को हुआ। और कष्ट उन लोगों को हुआ, जो उनके निकट थे। वे तो रोग-यंत्रणा के ऊपर थे, इसीसे यंत्रणा के निवारण के लिए तिल मात्र विकल नहीं हुए। इसी से बिना चिकित्सा के उन्होंने शरीर त्याग दिया।

उनके महाप्रयाण का दिन भूल नहीं पाता। मैंने तो एक आश्रय ही खो दिया—समझ में आये या न आये —जिस आश्रय से प्राण शक्ति प्राप्त करता हूँ। फिर भी यह कहकर अपने को समझाया है—'इतने बड़े महापुरुष के सान्निध्य में लम्बे तेरह वर्ष तो काटे हैं, यह मेरा महा सौभाग्य है। उनके सान्निध्य की पवित्र स्मृति ही मेरे परवर्ती जीवन का पाथेय है।'

महाराज जी के आदेशानुसार मैं अपना शेष जीवन नियंत्रित करने की चेष्टा करता हूँ। एक दिन उन्होंने कहा था—'आप डिस्पेंसरी में बैठेंगे तो वह खुली रहेगी।' और एक दिन उन्होंने कहा था 'आप जो काम में हैं, वही आपके लिए सब है।' इन दोनों वाक्यों को मन में रखे हुआ हूँ। इसीसे हाईकोर्ट की नौकरी से अवकाश ग्रहण करने पर भी लौट कर छपरा नहीं जाता हूँ। बीच-बीच में अवश्य अपने गाँव जाता हूँ, स्त्री-पुत्रों को देख-सुन आता हूँ। किन्तु हूँ इलाहाबाद की डिस्पेंसरी के कार्य ही सँभालता। मुट्ठीगंज आश्रम में हुँ, यहाँ उनकी पुण्य स्मृति का स्पर्श पाता हूँ। परमार्थ की ओर कितना आगे बढ़ा हूँ, नहीं जानता, जानने की आवश्यकता भी है क्या? यदि उनको पकड़ कर रह सकूँ, तो यही यथेष्ठ है। उनकी कृपा से यही जानता हूँ।

(पृष्ठ १० का शेषांश)

ईशान मुखोपाध्याय को आदेश दिया। ईशान बाबू का कथन तुलसी दास जी के वर्णन के साथ मिलता है। यथा—

अहंकार के कारण हकलोगों में विश्वास कम है। काक भुशुण्डि ने श्री रामचन्द्र जी को पहले अवतार नहीं माना था। अन्त में जब चन्द्रलोक, देवलोक और कैलास में उसने भ्रमण करके देखा कि, राम के हाथ से उसका किसी प्रकार निस्तार नहीं हो रहा है, तब खुद वह राम की शरण में आया। राम उसे पकड़ कर निगल गये। भुशुण्डि ने तब देखा कि, वह अपने पेड़ पर ही बैठा हुआ है। उसका अहंकार जब चूर्ण हो गया, तब उसने समझा कि, राम देखने में तो मनुष्य की तरह हैं, परन्तु ब्रह्माण्ड उनके उदर में समाया हुआ है। उन्हीं के पेट में आकाश, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, समुद्र, पर्वत, जीवजन्तु, पेड़-पौधे आदि हैं।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि भगवान् श्री रामकृष्ण ने स्वयं राम चरित मानस का पारायण तो नहीं किया था लेकिन उसे सुना अवश्य था, और गोस्वामी जी की कई उक्तियाँ उन्हें अच्छी लगी थीं जिनका उपयोग वे कई अवसरों पर प्रकारान्तर से स्वयं करते थे या अपने भक्तों से करवाते थे।

श्री सारदा देवी

—स्वामी वेदान्तानन्द

द्वितीय अध्याय

बाल्य काल और शिक्षा

सारदा देवी अपने माता-पिता की प्रथम संतान थीं। बंगला सन् १२६० साल के पौष ८ (२१ दिसम्बर, सन् १८५३ ई०) वृहस्पतिवार की संध्या वेला में पृथ्वी पर उनका अवतरण हुआ था। पंजीकार के हिसाब से उस दिन अगहन महीने के कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि थी। माता-पिता के स्नेह से सिंचित हो बालिका दिन-दिन बड़ी होने लगी। देखते-देखते उनकी आयु के पाँच वर्ष बीत गये और छट्ठा वर्ष आ गया। इसी वय में १२६६ साल (१८६९ ई०) के बैशाख मास में उनका विवाह हुआ। आज कल के लोगों में, विशेषकर नगर की शिक्षित महिलाओं में, यह बात बड़ी अद्भुत् लगेगी। किन्तु मैं जिस समय की कथा कह रहा हूँ उस समय लोग इस प्रकार के विवाह को अन्याय या अस्वाभाविक नहीं मानते थे।

श्री रामकृष्ण परमहंस देब का नाम नहीं सुना हो—ऐसा कोई व्यक्ति आजकल बंगाल में ढूँढ़े नहीं मिलेगा। उनका जन्मस्थान था जयराम बाटी के अत्यन्त निकट—मात्र तीन मील दूर—हुगली जिले के कामारपुकुर नामक गाँव में। बचपन से ही वे भगवान के नाम के मतवाले थे। जब उनकी उम्र प्रायः बीस वर्षों की थी, उस समय वे रानी रासमणि द्वारा दक्षिणेश्वर में स्थापित श्री श्री काली मन्दिर के पुजारी नियुक्त हुए। भारत में मन्दिरों की कोई सीमा-संख्या नहीं है। उन सब मंदिरों में अगणित देवताओं के विग्रह हैं—और उनकी सेवा में नियुक्त हैं लाखों-लाख ब्राह्मण। दिन पर दिन वे देवता की पूजा करते हैं, भोग लगाते हैं, प्रसाद पाते हैं—निश्चिन्तता से उनके दिन कट जाते है। भोग लगाने पर देवता खाते हैं कि नहीं खाते हैं, ये सब चिन्ताएँ कभी उनको व्यस्त नहीं करतीं। किन्तु, श्री रामकृष्ण थे एक नये ढंग के पुजारी। दस आदमी जो करते या बोलते हैं उसे मन में ग्रहण कर वे खुश नहीं हो पाते थे—सब कुछ की जाँच-पड़ताल कर और परीक्षा कर ही वे ग्रहण करना चाहते थे। सुनी बातों का विश्वास कर उनका मन किसी दिन तृप्त नहीं होता था। पुजारी का कार्य-ग्रहण करते के बाद प्रतिक्षण उनके मन में होने लगा—सचमुच जगत् जननी काली हैं कि नहीं। और उनके रहने से ही क्या लाभ, यदि भक्त की प्रार्थना वे नहीं सुनतीं, उसे दर्शन नहीं देतीं। भगवान का दर्शन पाने के लिए वे पागल हो गये। कुछ ही दिनों के बाद शास्त्रों के विधानानुसार नियम पूर्वक पूजा करना उनके लिए और संभव नहीं हुआ। दिन-रात प्रार्थना में, साधन-भजन में कटने लगे। देह की कोई चिन्ता नहीं। भोजन-शयन सब कुछ भूल गये। हर दम मुँह से केवल 'माँ-माँ' की ध्वनि। उनके प्राणों की व्यथा-कथा साधारण संसारी प्राणी क्या समझेंगे! उनकी धारणा हुई कि वे पागल हो गये। ऐसा न होने पर, भगवान का नाम तो अनेक लोग लेते हैं, किन्तु दिन के शेष होने पर 'माँ को नहीं देख पाया', ऐसा कह कर उनकी तरह गंगा के तट पर मुँह रगड़ कर दूसरा कोन रक्त बहाकर फेंकता है! केवल रानी रासमणि के दामाद माथुर बाबू आदि की भाँति दो-चार भाग्यवान व्यक्ति उनका भक्ति-विश्वास देखकर मुग्ध हुए एवं उन्हें महापुरुष जानकर यथासाध्य उनकी सेवा की व्यवस्था की।

सामान्य लोगों का जैसा स्वभाव है, वे श्री रामकृष्ण जी के मन की अवस्था कुछ समझ नहीं पाकर उनके सम्बन्ध में अनेक कथाएँ विस्तार पूर्वक चारो दिशाओं में कह कर फैलाने लगे। इन अफवाहों को कामारपुकुर एवं श्री रामकृष्ण की माँ चन्दा देवी और पिता रामेश्वर के कानों तक पहुँचने में अधिक देर नहीं लगी। समाचार सुनकर वे बड़े व्याकुल हुए और श्रीरामकृष्ण को घर ले आये। घर आकर कुछ दिनों तक निवास करने पर वे काफी शान्त हो गये। जिनको देखने की आशा से वे दिन रात रोते थे उन्होंने ही इस समय कृपाकर उनको दर्शन दिया था।

वे अत्यन्त सहज मनुष्य की भाँति चलने-फिरने लगे, किन्तु जिस प्रकार अपने बचपन में वे श्मशान में बैठकर ध्यान आदि का अभ्यास करते थे, उसी प्रकार अब भी करते थे। संसार के सभी कार्यों के प्रति उनमें उदासीन भाव रह गया। यह सब देखकर उनकी माँ और भाई ने परामर्श किया कि विवाह कर देने से यह समाप्त हो जायगा। पास पड़ोस के लोगों ने जो सारी कथाएँ फैला दी थीं उन्हें नहीं दुहराने से भी काम चलेगा। गदाधर (संन्यासी होने के पूर्व श्रीरामकृष्ण का यही नाम था।) ने ये सब युक्ति-परामर्श सुने, किन्तु किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। चारो ओर उपयुक्त कन्या की खोज होने लगी, किन्तु यथा साध्य दहेज के रुपये देने पर भी मनोनुकूल किसी पात्री की जुगार वे नहीं कर सके। ढूँढ़-ढूँढ़ कर जब सब एक समान हताश हो गये, तब एक दिन गदाधरने स्वयं ही कन्या का पता दिया—'जय-रामबाटी ग्राम में रामचन्द्र मुखर्जी के घर जाइए, उनकी पुत्री मेरे लिए खूँटे में बँधी है, उसी के साथ मेरा विवाह होगा।'

रामेश्वर अपने साथियों के साथ चले मुखर्जी महाशय के घर। अरे बाप, यह तो रत्ती भर की लड़की है; कुल पाँच बरस पार कर छठे में आयी है। किन्तु और किया क्या जाय! सुविधानुसार पात्री जब मिल नहीं रही है, और गदाई (गदाधर) ने जब स्वयं इसका पता दिया है, वंश भी कुलीन है, तब यहीं सम्बन्ध ठीक कर लेना चाहिए। तय हुआ, विवाह में वर पक्ष को तीन सौ रुपये दहेज में देने होंगे।

सन् १२६६ साल (सन् १८५९ ई०) के बैशाख महीने के अन्त में शुभ दिन में विवाह हो गया। दोनों पक्ष गरीब थे, किंतु, विवाह कार्य में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। विवाह के समय वधू को दो-चार गहने पहनाकर नहीं सजाने से लोग क्या कहेंगे—ऐसा सोचकर चन्द्रमणि देवी ने अपने पड़ोसी लाहा बाबू के घर से कई थान गहने उधार लाकर जयरामबाटी भेज दिया। किन्तु उधार ली हुई चीज और कितने दिनों तक रखी जा सकती! उन दिनों विवाहोपरान्त पहलीवार ससुराल आने पर नववधू अधिक दिनों तक वहाँ नहीं रहती थी। सारदा के जयरामबाटी लौटने का दिन आया। इसबार कुल गहने खोलकर जिसकी चीजें है उसे लौटानी होगी। चन्द्रा देवी महा संकट में पड़ गयीं। बहू के शरीर से कैसे सब गहने उतार लूँगी! श्री रामकृष्ण ने स्वयं ही अपनी माँ की इस चिन्ता को दूर कर दिया। बालिका जब सोयी, तब श्रीरामकृष्ण ने काफी सतर्कता से गहनों को खोल लिया। बालिका जान भी नहीं पायी। सोकर उठने पर बालिका गहनों के लिए रोयी थी। 'मेरा गदाई तुम्हें और भी अच्छे गहने गढ़वा देगा'—ऐसा कह कर किसी प्रकार चन्द्रादेवी ने उन्हें सांत्वना दी थी। चन्द्रादेवी की यह बात भविष्य में सच साबित हुई थी। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें केवल सोना-चाँदी के गहने गढ़वा दिये थे, सो नहीं—उन्हें इतनी सारी सुन्दर शिक्षाओं के अलंकार से सज्जित कर दिया था कि पति के निकट रह-कर शायद ही किसी नारी के भाग्य में ऐसा हुआ हो।

विवाहोपरांत श्रीरामकृष्ण एक वर्ष सात महीने तक कामारपुकुर में थे। १२६७ साल (सन् १८६० ई०) के अगहन महीने के आरम्भ में—सारदा देवी की उम्र जब सात साल की थी—उस समय उस देश की कुल प्रथा के अनुसार 'जोड़' (अपने साथ) सारदा देवी को कामारपुर ले आने के लिए श्रीरामकृष्ण जयरामबाटी गये थे। इसके कुछ दिनों बाद ही वे दक्षिणेश्वर लौट आये। सारदा देवी इसके पहले ही पितृगृह चली गयी थीं।

दक्षिणेश्वर आकर श्रीरामकृष्ण पहले की तरह साधना के सागर में डूब गये। कहाँ रहा उनका घर-द्वार, माँ-भाई, और कहाँ गया उनका विवाह और पत्नी ! सारदा देवी भी थीं बिल्कुल कम उम्र की। विवाह के बाद पति की बात उन्हें भी उस समय खूब याद आती—ऐसा नहीं लगता है। वे भी सांसारिक कार्यों में, पहले की तरह, माँ की सहायता कर दिन बिताने लगीं।

जिस समय की कथा मैं कह रहा हूँ उस समय लड़कियों को लिखना-पढ़ना सिखाने की आवश्यकता विशेष रूप से कोई समझता नहीं था। उस समय उनके लिए गाँव-गाँव में स्कूल या पाठशाला भी नहीं थी। सारदा देवी बीच-बीच में अपने छोटे भाई के साथ पाठशाला जाती थीं। इसके फलस्वरूप उन्हें कुछ-कुछ अक्षर-ज्ञान हुआ। बाद में एक बार कामारपुकुर आकर एक वर्ण-परिचय उपलब्ध किया तथा श्रीरामकृष्ण की भतीजी लक्ष्मी देवी के साथ पढ़ना आरंभ किया। लक्ष्मी पाठशाला में पढ़ी थी तथा घर आकर सारदा देवी को पढ़ाती थी। किन्तु इस प्रकार पढ़ना-लिखना अधिक दिनों तक नहीं चला। श्रीरामकृष्ण का भगिना हृदय ने यह कह कर एक दिन पुस्तक ले ली— 'लड़कियाँ लिखना-पढ़ना सीख कर क्या बाद में नाटक-उपन्यास पढ़ना आरंभ करेंगी !' अच्छी तरह पढ़ना सीखने का सुयोग उन्हें हुआ दक्षिणेश्वर में। श्रीरामकृष्ण उन दिनों चिकित्सा के लिए श्यामपुकुर में रहते थे। उस समय सारदा देवी को कोई विशेष काम-काज नहीं था। भव मुखर्जी की एक विधवा पुत्री कालीबाड़ी के घाट पर गंगा स्नान करने आती थी। यही लड़की रोज सारदा देवी को पढ़ा जाती थी। वे बगीचे में जो साग-पात, तर-तरकारी पातीं उसे देकर उस लड़की को तुष्ट करतीं थीं।

सारदा देवी छपी पुस्तक अच्छी तरह पढ़ लेती थीं रामायण, महाभारत आदि उनके अत्यन्त प्रिय ग्रंथ थे। लेकिन लिखने में कुशलता उन्हें कभी नहीं हुई।

टोले-गाँवों के गरीब और मध्यवित्त घरों की लड़कियाँ काफी कम उम्र से ही अनेक प्रकार के सांसारिक कार्यों में माँ-बाप की सहायता करने को बाध्य होती थीं। सारदा देवी भी इसीसे, बचपन से ही अनेक प्रकार के सांसारिक कर्मों में खूब निपुण हो गयी थीं। मजदूरों को जलपान के लिए खेत में जाकर उन्हें मूढ़ी पहुँचानी होती थी। बीच-बीच में गर्दन भर पानी में उतर कर गाय के लिए जल-घास काटतीं। उनकी माँ जब किसी कारण से रसोई बनाने में असमर्थ होतीं तब वे रसोई पकाने बैठ जातीं। किन्तु, उनके कोमल कच्चे छोटे हाथों को भात की हाँड़ी उतारने की शक्ति नहीं थी। इसलिए वे अपने पिता को मात्र यह कार्य करने देती थीं। इसके अतिरिक्त गोद में लेकर टहलाना, खिलाना, रोने पर अनेक उपायों से चुप कराना आदि विभिन्न रूपों से अपने छोटे भाइयों की सेवा भी उन्हें करनी पड़ती थी।

बचपन से ही उनका चाल-चलन, व्यवहार आदि स्वतंत्र रूप का ही देखा जाता था— सामान्य छोटी लड़कियों की भाँति का नहीं। अपनी उम्र की लड़कियों की भाँति बाल-क्रीड़ा में उनका मन एकाएक मचल नहीं पड़ता था। उनका व्यवहार था अति सरल। खेल की सहेलियों के साथ वे कभी झगड़ा नहीं करती; बल्कि सर्वदा उनके झगड़ों को मिटाकर उनमें आपस में प्रेम उत्पन्न कर देती थीं। खेलने के समय वे गृह-स्वामिनी या बूढ़ी की तरह बैठतीं : उनके पास खेलने की अनेक गुड़ियाँएँ थीं। किन्तु, गुड़ियों के साथ खेलने की अपेक्षा काली या लक्ष्मी की मिट्टी की मूर्त्ति की फूल,बेलपत्र से पूजा करने में उन्हें अधिक आनंद मिलता था।

अक्षर-ज्ञान अर्थात् लिखना-पढ़ना सीखना ही शिक्षा की बड़ी बात नहीं है। जिस शिक्षा को पाने से मनुष्य 'मनुष्य' के रूप में गिना जाता है, जिस शिक्षा के फल से मनुष्य के चरित्र में सत्यवादिता, सरलता, दया, क्षमा, धैर्य, तेजस्विता आदि सद्गुणों का विकास होता है, वह शिक्षा ही प्रकृत शिक्षा है। उस समय गाँव-गाँव में स्कूल-पाठशाला और छपी पुस्तकों की प्रचुरता नहीं रहने पर भी चरित्रगठन के लिए उपयोगी शिक्षा व्यवस्था का अभाव नहीं था। उन दिनों गाँव-गाँव में पूजा-पार्वण, महोत्सव, यात्रा, पुराण-पाठ आदि होते ही रहते थे।

घर-घर में प्रायः प्रतिदिन रामायण-महाभारत का पाठ होता। इन सब से बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब चरित्र-गठन एवं सत् भाव से जीवन-यापन के अनेक उपादान प्राप्त कर लेते थे। सारदादेवी ने अपनी बाल्यावस्था में इन सब को सुनने के अनेक सुयोग पाये थे। और इन सब ने उनके चरित्र के ऊपर व्यापक प्रभाव डाला था। उन्होंने सुन-सुनकर अनेक पौराणिक कथाओं, श्लोकों, पद्यों आदि को स्वायत्त कर लिया था। परवर्ती जीवन में कथा-वार्ता के बीच में इन पदों आदि को दुहरा कर वे अपते वक्तव्य को मधुर कर देती थीं।

धर्म-भीरु, ईश्वर-परायण, दयालु माता-पिता के चरित्र ने भी उनके जीवन पर विशेष प्रभाव डाला था। वे आजीवन उनकी बातों का श्रद्धा के साथ उल्लेख करती थीं। सबसे बढ़कर उन्होंने अपने देवतुल्य स्वामी के समीप शिक्षा-लाभ का जो अपूर्व सुयोग पाया था वह सौभाग्य जगत् में दुर्लभ है।

(क्रमशः)

एकान्त में गये बिना कठिन बीमारी कैसे अच्छी होगी ? बीमारी तो है सन्निपात की, और जिस कमरे में वह रोगी है, उसी कमरे में इमली का अचार और जल का कुण्डा है ! पुरुष के लिए स्त्री इमली का अचार है और भोग-वासना है जल का कुण्डा। इससे बीमारी कैसे अच्छी होगी ? (बीमारी की अवस्था तक जैसे रोगी को बद-परहेज से दूर रहना पड़ता है, वैसे ही) कुछ दिन निवास-स्थान से कहीं दूर एकान्त में जाकर साधन-भजन करना चाहिए। तदनन्तर नीरोग होकर लौटकर फिर घर में रहने से भी कोई डर नहीं।

—परमहंस श्री रामकृष्ण

लोहा यदि एक बार पारस को छूकर सोना हो जाय, तो फिर उसे चाहे मिट्टी के भीतर दबाये रखो, चाहे कूड़े में फेंक दो, रहेगा वह सोना ही। जिन्होंने सच्चिदानन्द को पा लिया है, उनकी भी ऐसी ही अवस्था है। वे लोग संसार में रहें या वन में, उन्हें दोष-स्पर्श नहीं होता।

—परमहंस श्रीरामकृष्ण

(श्रीरामकृष्ण-उपदेश : रामकृष्ण मठ, नागपुर से सानुमति)

विवेक दीप : विवेक शिखा

विवेक दीप के पाठकों एवं विज्ञापन दाताओं को सादर सूचित किया जाता है कि 'विवेक दीप' अगले महीने से 'विवेक शिखा' के नाम से प्रकाशित किया जायगा। चूँकि भारतीय समाचार-पत्र, पंजीकरण कार्यालय, नयी दिल्ली ने कतिपय अपरिहार्य कारणों से 'विवेक दीप' नाम का पंजीयन न कर 'विवेक शिखा' नाम का ही पंजीयन करने में सहमति प्रकट की है इसलिए, विवश होकर हमें 'विवेक दीप' के नाम में यह किंचित् परिवर्तन करना पड़ रहा है।

जिन ग्राहकों ने 'विवेक दीप' के लिए सहयोग राशि जमा की है, उन्हें उसी राशि पर अगले महीने से 'विवेक शिखा' भेजी जाती रहेगी। नये सिरे से उन्हें सहयोग राशि भेजने की आवश्यकता नहीं होगी।

नाम-परिवर्तन से ग्राहकों को कोई असुविधा नहीं होगी—ऐसा मेरा विश्वास है।

प्रकाशक
विवेक दीप

क्षमा-याचना

प्रेस कर्मचारियों की अप्रत्याशित एवं आकस्मिक हड़ताल के कारण हम 'विवेक दीप' का अप्रैल अंक नियत समय पर नहीं निकाल सके। इसका हमें दुःख है। पर्याप्त विलम्ब हो जाने के कारण विवश होकर हमें अप्रैल-मई का संयुक्तांक निकालना पड़ रहा है। लेकिन इस अंक में हमने कागज का स्तर काफी अच्छा कर दिया है। कागज का कोटा अभी निर्धारित नहीं होने के कारण हमें काफी ऊँचे मूल्य पर कागज खरीदना पड़ता है। फिर भी, हमारी चेष्टा है कि हम उत्तम-से-उत्तम रूप में पत्रिका अपने प्रिय पाठकों को नियमित समय पर देते रहें। ऊँची दर के कागज के बावजूद 'विवेक दीप' के इस अंक की सहयोग राशि में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

इस अंक के विलम्ब से प्रकाशन के कारण हमारे धर्म-प्राण पाठकों को जो असुविधा हुई है, उसके लिए हम क्षमा-याचना करते हैं।

प्रकाशक
विवेक दीप

उत्सव-सूची

दूरभाष : ५०८१५

[पहला वैशाख, १५ अप्रैल १९८२,—१४ अप्रैल १९८३]

उत्सव	वार	तिथि		
नववर्ष	— वृहस्पतिवार	१५	अप्रैल	१९८२
श्री शंकराचार्य	— बुधवार	२८	,,	,,
श्री बुद्धदेव	— शुक्रवार	७	मई	,,
स्वामी रामकृष्णानन्द	— सोमवार	१९	जुलाई	,,
तुलसी जयन्ती	— रविवार	१	अगस्त	,,
स्वामी निरंजनानन्द	— बुधवार	४	,,	,,
श्री कृष्ण जन्माष्टमी	— वृहस्पतिवार	१२	,,	,,
स्वामी अद्वैतानन्द	— बुधवार	१८	,,	,,
स्वामी अभेदानन्द	— रविवार	१२	सितम्बर	,,
स्वामी अखण्डानन्द	— शुक्रवार	१७	,,	,,
श्री श्री दुर्गापूजा	— बुधवार	२२	,,	,,
	से सोमवार	२७	,,	,,तक
श्री श्री कालीपूजा	— शनिवार	१६	अक्टूवबर	,,
स्वामी सुबोधानन्द	— शुक्रवार	२९	,,	,,
स्वामी विज्ञानानन्द	— रविवार	३१	,,	,,
स्वामी प्रेमानन्द	— वृहस्पतिवार	२५	नवम्बर	१९८२
श्री श्री सारदादेवी	— मंगलवार	७	दिसम्बर	,,
स्वामी शिवानन्द	— शनिवार	११	,,	,,
स्वामी सारदानन्द	— मंगलवार	२१	,,	,,
क्रिसमस ईव	— शुक्रवार	२४	,,	,,
स्वामी तुरीयानन्द	— बुधवार	२९	,,	,,
स्वामी विवेकानन्द	— बुधवार	५	जनवरी	१९८३
स्वामी ब्रह्मानन्द	— रविवार	१६	,,	,,
स्वामी त्रिगुणातीतानन्द	— मंगलवार	१८	,,	,,
श्री श्री सरस्वती पूजा	— बुधवार	१९	,,	,,
स्वामी अद्भुतानन्द	— शुक्रवार	२८	,,	,,
शिवरात्रि	— शुक्रवार	११	फरवरी	,,
श्री श्री रामकृष्णदेव	— बुधवार	१६	मार्च	,,
होली और चैतन्यदेव	— सोमवार	२८	,,	,,
स्वामी योगानन्द	— शुक्रवार	१	अप्रैल	,,

एकादशी तिथि—संध्यारति के बाद श्री श्री रामनाम संकीर्तन

वार	तिथि		
मंगलवार	— २०	अप्रैल	१९८२
सोमवार	— ३	मई	,,
बुधवार	— १९	,,	,,
,,	— २	जून	,,
शुक्रवार	— १८	,,	,,
वृहस्पतिवार	— १	जुलाई	,,
शनिवार	— १७	,,	,,
,,	— ३१	,,	,,
रविवार	— १५	अगस्त	,,
सोमवार	— ३०	,,	,,
,,	— १३	सितम्बर	,,
बुधवार	— २९	,,	,,
,,	— १३	अक्टूवर	,,
वृहस्पतिवार	— २८	अक्टूबर	१९८२
,,	— ११	नवम्बर	,,
शनिवार	— २७	,,	,,
,,	— ११	दिसम्बर	,,
सोमवार	— २७	,,	,,
रविवार	— ९	जनवरी	१९८३
मंगलवार	— २५	,,	,,
,,	— ८	फरवरी	,,
वृहूस्पतिवार	— २४	,,	,,
,,	— १०	मार्च	,,
शुक्रवार	— २५	,,	,,
शनिवार	— ५	,,	,,

विवेक दीप : प्रतिक्रियाएं

(१)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि 'विवेक दीप' के रूप में श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द की विचारधारा की एक समर्थ हिन्दी मासिकी पाठकों के सामने आयी है। कर्म ज्ञान और भक्ति का जो जागरण-मंत्र श्रीरामकृष्ण और विवेकानन्द ने हमें दिया था, उसका प्रसार 'विवेक दीप' की लौ सम्पूर्ण हिन्दी जगत में करेगी—ऐसा मेरा विश्वास है।

(ह०) डॉ० कुमार विमल
अध्यक्ष, बिहार लोक सेवा आयोग,
पटना।

(२)

'विवेक दीप' की प्रति मिली। हिन्दी मासिकों का बिहार में भविष्य संशय ग्रस्त रहता है। अच्छा हो, भविष्य में सिर्फ विवेकानन्द मिशन पर केन्द्रित न रहकर धर्म, नीति, अध्यात्म विषयों का परिग्रहण भी रहे। आपकी निष्टा को चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा।

इधर कुछ वर्षों में विवेकानन्द के समाज-दर्शन पर ३ पुस्तकें (पी० एच० डी० थिसिस) प्रकाशित हुई हैं। अन्य रचनाएँ भी निकल रही हैं। इनका मूल्यांकन भी हो सकता है।

शुभचिन्तक
(डॉ०) विश्वनाथ प्रसाद वर्मा
आचार्य एवं अध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना।

(३)

'विवेक दीप' की दो प्रतियाँ प्राप्त हुई। प्रथम प्रयास प्रशंसनीय है। परमहंस भगवान रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द की विचाराधारा हमारे समाज के लिए सर्वथा उपयुक्त और शाश्वत उपयोगी है।

भवदीय
बनवारी लाल शर्मा
प्रबन्ध निदेशक, श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०
पटना।

(४)

'विवेक दीप', जो समर्पण के भाव से रंजित सर्वोत्तम पत्रिकाओं में से एक है, के प्रकाशन के लिए श्रीरामकृष्णमय मेरी बधाइयाँ स्वीकार कीजिए।

आपका
प्रो० हरि प्रसाद
परामर्शकर्त्ता,
इस्टर्न इण्डिया को-आर्डिनेशन स्टडी,
१ए, शशि घोष लेन, कलकत्ता-५।

(५)

'विवेक दीप' के प्रकाशन के लिए अत्यन्त बधाई। जीवन में बेकार बैठने से अगर गुलाब के चार पौधे भी उगाये जा सकें तो अच्छा। और आपने तो बड़े महत् उद्देश्य को लेकर प्रयास प्रारंभ किया है। अतः सफलता मिलेगी ही। मेरी शुभकामना आपके तथा आपकी पत्रिका के साथ है।

प्रो० श्रीमती देविका झा
हिन्दी विभाग,
रमेश झा महिला कॉलेज, सहरसा।

विवेक वाणी :—

कर्त्तव्य

अपना कर्त्तव्य पालन करके तुम सत्प्रकृति का उत्कर्ष करो। अपना कर्त्तव्य पालन करने से हम कर्त्तव्य की भावना से मुक्ति पाते हैं; और केवल तभी, तभी हम हर बात को ईश्वरकृत अनुभव कर पाते हैं। हम सब तो उसके हाथ में यंत्र के सामान हैं। यह शरीर अपारदर्शक है, ईश्वर दीपक हैं। जो कुछ शरीर के बाहर है, वह ईश्वर का है। तुम इसे नहीं अनुभव करते, तुम 'मैं' का अनुभव करते हो। यह भ्रम है। तुम ईश्वर की इच्छा के समक्ष मूक समर्पण करना सीखो। कर्त्तध्य इसके लिए सर्वोत्तम पाशठाला है। यही कर्त्तव्य नैतिकता है। अपने को पूर्णतया विनम्र बनाने का अभ्यास करो।

महापुरुष

प्रकाश तो सर्वत्र है, किन्तु उसके दर्शन पवित्र पुरुषों में ही होते हैं। एक महापुरुष बिल्लोरी कांच के समान होता है, जिसके माध्यम से ईश्वर की किरणें आती और लौटती हैं। किसी जीवन्मुक्त की उपासना क्यों न करो ?

पवित्र व्यक्तियों से सम्पर्क शुभ है। यदि तुम पवित्र लोगों के निकट जाओगे तो वहाँ की हर वस्तु से अचेतन रूप से पवित्रता बहती हुई पाओगे।

ईश्वर

हम किसी ऐसी वस्तु की कल्पना नहीं कर सकते, जो ईश्वर न हो। अपनी पंचेन्द्रियों से जो कुछ हम सोच सकते हैं; वह सब वह है और उससे भी अधिक है। वह (ईश्वर) एक गिरगिट के समान है। हर मनुष्य, हर राष्ट्र उसका एक आकार देखता है, जो विभिन्न अवसरों पर भिन्न-भिन्न होता है। हर मनुष्य ईश्वर को देखे और जो उसे अनुकूल लगे, उसे ग्रहण करे, जैसे हर पशु प्रकृति से अपने अनुकूल आहार ग्रहण करता है।

—स्वामी विवेकानन्द

[अद्वैत आश्रम, कलकत्ता १४ द्वारा प्रकाशित विवेकानन्द साहित्य : प्रथम खण्ड से—साभार]

श्रीकान्त लाभ द्वारा प्रकाशित एवं जनता प्रेस, नयाटोला, पटना में मुद्रित। सम्पादक—डॉ० केदारनाथ लाभ।